श्री कृष्णायन सेवा सदन पलवल

धर्म, अध्यात्म और षड्दर्शन के 1000 मुख्य प्रचलित शब्दों की व्युत्पत्तिः

निर्देशानुसार गुरुदेव श्री सुभाष शर्मा जी

संकलनकर्ता सुनील दत्त वशिष्ठ

ॐ

भाग 1: परम तत्त्व, ईश्वर और दिव्य विग्रह (1-100)

1. ईश्वर: ईशते इति ईश्वरः। (जो संपूर्ण ब्रह्मांड पर शासन करता है।)
2. नारायण: नारं अयनं यस्य सः। (जो समस्त जीवों का अंतिम आश्रय है।)
3. शिव: शेते सर्वं जगत् यस्मिन् सः। (प्रलयकाल में संपूर्ण जगत जिसमें विश्राम करता है।)
4. कृष्ण: कर्षति आकर्षति इति कृष्णः। (जो अपने प्रेम और आनंद से सबके चित्त को खींच लेता है।)
5. राम: रमन्ते योगिनो यस्मिन् सः। (योगी पुरुष समाधि में जिस परमानंद में रमण करते हैं।)
6. देव: दीव्यति द्योतते इति देवः। (जो स्वयं प्रकाशमान है और ज्ञान-सुख देता है।)
7. अंतर्यामी: अन्तः यमयति इति अन्तर्यामी। (जो भीतर बैठकर वृत्तियों का नियमन करता है।)
8. परमात्मा: परमः च असौ आत्मा इति परमात्मा। (जो सब आत्माओं में सर्वोच्च और निर्विकार है।)
9. जगन्नाथ: जगतः नाथः इति जगन्नाथः। (इस चर-अचर ब्रह्मांड का एकमात्र स्वामी।)
10. अक्षरा: न क्षरति इति अक्षरम्। (जिसका कभी नाश या क्षय नहीं होता।)
11. अव्यक्त: न व्यक्तं भवति इति अव्यक्तम्। (जो इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आता; सृष्टि का मूल कारण।)
12. कूटस्थ: कूटवत् तिष्ठति इति कूटस्थः। (बदलावों के बीच जो अचल और स्थिर रहता है।)
13. विभु: विविधं भवतीति विभुः। (जो सर्वव्यापी और अनंत है।)
14. हिरण्यगर्भ: हिरण्यं गर्भः यस्य सः। (सृष्टि के आदि में प्रकट होने वाली ब्रह्मांडीय बुद्धि।)
15. चिदाकाश: चित् एव आकाशः इति चिदाकाशः। (शुद्ध चेतना का अनंत आकाश।)
16. ईश्वरकोटि: ईश्वरस्य कोटिः इति ईश्वरकोटिः। (लोक-कल्याण के लिए जन्मे जन्ममुक्त महापुरुष।)
17. पराशक्ति: परमा च असौ शक्तिः इति पराशक्तिः। (परमेश्वर की मूल और अनंत सामर्थ्य।)
18. अव्याकृत: न व्याकृतं इति अव्याकृतम्। (सृष्टि से पहले की नाम-रूप रहित अविभाजित अवस्था।)
19. चिन्मय: चित् मयट इति चिन्मयः। (जो पूरी तरह चेतना या ज्ञान से ओतप्रोत हो।)
20. ब्रह्म: बृहत्त्वात् बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्म। (जो स्वभाव से ही अनंत और सबसे बड़ा है।)
21. अनादि: न आदिः यस्य सः। (जिसका कोई आदि या शुरुआत नहीं है।)
22. अनंत: न अंतः यस्य सः। (जिसकी कोई सीमा या अंत नहीं है।)
23. सगुण: गुणैः सहितः इति सगुणः। (गुणों और आकारों के साथ प्रकट ईश्वर।)
24. निर्गुण: गुण-रहितः इति निर्गुणः। (प्रकृति के गुणों और आकारों से परे निराकार तत्व।)
25. जगत्कारण: जगतः कारणम् इति जगत्कारणम्। (इस पूरी सृष्टि को उत्पन्न करने वाला मूल आधार।)
26. गोविंद: गां (वेदां/गां) विन्दति इति गोविन्दः। (वेदों के माध्यम से जानने योग्य या गौओं के रक्षक।)
27. माधव: मायाः (लक्ष्म्याः) धवः (पतिः) इति माधवः। (लक्ष्मी के स्वामी या मधुरता के सागर।)
28. वासुदेव: वसति सर्वं यस्मिन् इति वासुदेवः। (जिसमें सारा संसार बसता है और जो सबमें बसता है।)
29. हरि: हरति पापानि इति हरिः। (जो स्मरण करने मात्र से भक्तों के पापों को हर लेता है।)
30. विष्णु: वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः। (जो संपूर्ण चराचर जगत में व्यापक है।)

31. परमेश्वर: परमः च असौ ईश्वरः। (ईश्वरों का भी परम शासक।)

32. त्रिलोकीनाथ: त्रयाणां लोकानां नाथः। (तीनों लोकों का एकमात्र स्वामी।)

33. सच्चिदानंद: सत् चित् आनंदः इति सच्चिदानंदः। (सत्य, चेतना और आनंद का घन स्वरूप।)

34. सर्वज्ञ: सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः। (जो भूत, भविष्य और वर्तमान की हर बात जानता है।)

35. सर्वशक्तिमान: सर्वाः शक्तयः विद्यन्ते यस्मिन्। (जो सब कुछ करने में सर्वसमर्थ है।)

36. अज: न जायते इति अजः। (जो कभी जन्म नहीं लेता, अजन्मा है।)

37. अद्वय: न विद्यते द्वयं यस्मिन्। (जिसके समान दूसरा कोई तत्त्व नहीं है।)

38. पुरुषोत्तम: पुरुषेषु उत्तमः इति पुरुषोत्तमः। (क्षर और अक्षर दोनों पुरुषों से श्रेष्ठ परम तत्त्व।)

39. विश्वात्मा: विश्वस्य आत्मा इति विश्वात्मा। (संपूर्ण ब्रह्मांड की अंतरात्मा।)

40. त्रिगुणातीत: त्रयाणां गुणानां अतीतः। (सत्, रज, तम तीनों गुणों के पार।)

41. आदिपुरुष: आदिः च असौ पुरुषः। (सृष्टि का सबसे पहला चेतन तत्त्व।)

42. अचल: न चलति इति अचलः। (जो कभी अपने स्थान या स्वरूप से डिगता नहीं।)

43. अमूर्त: न मूर्ता यस्य सः। (जिसका कोई निश्चित भौतिक आकार नहीं है।)

44. परंधाम: परमं च तत् धाम। (वह सर्वोच्च लोक या स्थिति जहाँ पहुँचकर जीव लौटता नहीं।)

45. जगदीश: जगतः ईशः इति जगदीशः। (संपूर्ण संसार का स्वामी।)

46. सदाशिव: सदा कल्याणकारी इति सदाशिवः। (जो हर काल और परिस्थिति में केवल कल्याण ही करता है।)

47. महादेव: महांश्च असौ देवः। (देवताओं में सर्वोच्च पूजनीय देव।)

48. रुद्र: रुतं (दुःखं) द्रावयति इति रुद्रः। (जो संसार के दुखों को नष्ट कर देता है।)

49. ओंकार: ओमित्येवं रूपः कारः। (ब्रह्मांड की सबसे पहली दिव्य और मूल ध्वनि।)

50. सत्यनारायण: सत्यं रूपं नारायणः। (सत्य स्वरूप परम पुरुष।)

51. अमर्त्य: न म्रियते इति अमर्त्यः। (जो काल के प्रभाव से कभी नष्ट नहीं होता, अमर है।)

52. विश्वंभर: विश्वं बिभर्ति इति विश्वंभरः। (जो पूरे ब्रह्मांड का भरण-पोषण करता है।)

53. दीनबंधु: दीनानां बन्धुः इति दीनबन्धुः। (असहायों और गरीबों का एकमात्र सच्चा भाई या सखा।)

54. कृपानिधान: कृपायाः निधानम् (समुद्रः)। (कृपा और करुणा का असीम भंडार।)

55. भक्तवत्सल: भक्तेषु वत्सलः इति भक्तवत्सलः। (जो भक्तों पर संतान की तरह स्नेह लुटाता है।)

56. पतितपावन: पतितान् पावयति इति पतितपावनः। (पापियों का भी उद्धार कर उन्हें पवित्र करने वाला।)

57. अगम्य: न गम्यते मनसा इति अगम्यः। (जहाँ केवल मन या बुद्धि की दौड़ से नहीं पहुँचा जा सकता।)

58. अगोचर: न गोचरः (इन्द्रियाणां विषयः)। (जो स्थूल इन्द्रियों से देखा या छुआ नहीं जा सकता।)

59. अचिन्त्य: चिन्तितुं न शक्यते इति अचिन्त्यः। (जो विचारों की सीमा से सर्वथा परे है।)

60. अमेय: मातुं न शक्यते इति अमेयः। (जिसे किसी सांसारिक पैमाने से नापा नहीं जा सकता।)

61. निर्विकार: विकाराणां अभावः इति निर्विकारः। (जिसमें कभी कोई परिवर्तन या दोष नहीं आता।)

62. निराकार: आकार-रहितः इति निराकारः। (जिसका कोई भौतिक रूप या सीमा नहीं है।)

63. निरंजन: अंजन (माया) रहितः इति निरंजनः। (जो माया की कालिमा और दोषों से सर्वथा अछूता है।)

64. नित्य: सदा भवति इति नित्यः। (जो सदा था, है और रहेगा।)

65. शुद्ध: मल-रहितः इति शुद्धः। (जो अज्ञान और अशुद्धि से सर्वथा रहित है।)

66. बुद्ध: बोधस्वरूपः इति बुद्धः। (जो साक्षात परम ज्ञान का ही रूप है।)

67. मुक्त: बन्धन-रहितः इति मुक्तः। (जो कभी किसी बंधन में नहीं बंधता।)

68. सर्वव्यापी: सर्वत्र व्यापनशीलः इति सर्वव्यापी। (जो संसार के कण-कण में मौजूद है।)

69. चैतन्य: चेतनायाः भावः चैतन्यम्। (वह जागृत तत्त्व जिससे जड़ जगत क्रियाशील होता है।)

70. स्वयंप्रकाश: स्वयं प्रकाशते इति स्वयंप्रकाशः। (जिसे चमकने के लिए किसी सूर्य या दीपक की आवश्यकता नहीं।)

71. निराश्रय: न आश्रयः यस्य सः। (जिसका कोई दूसरा आधार नहीं, जो सबका आधार है।)

72. एकमेवाद्वितीयम: एकं एव अद्वितीयं च। (जो केवल एक ही है, जिसके जैसा कोई दूसरा नहीं।)

73. अविकारी: न विकारी इति अविकारी। (जिसके स्वरूप में कभी कोई गिरावट नहीं आती।)

74. परमाक्षर: परमं च तत् अक्षरम्। (विनाश से परे अविनाशी तत्त्व।)

75. अविनाशी: न विनाशी इति अविनाशी। (जिसका कभी किसी काल में नाश नहीं हो सकता।)

76. योगेश्वर: योगानां ईश्वरः इति योगेश्वरः। (समस्त योगों और सिद्धियों के परम स्वामी।)

77. परमपुरुष: परमः च असौ पुरुषः। (वेदांत के अनुसार सर्वोच्च चेतन तत्त्व।)

78. अमृतत्व: अमृतस्य भावः अमृतत्वम्। (अमरता या मोक्ष की वह स्थिति जहाँ मरण नहीं होता।)

79. ऋतेश्वर: ऋतस्य (नियमस्य) ईश्वरः। (ब्रह्मांडीय नैतिक व्यवस्था के नियंत्रक।)

80. चिद्धन: चित् (चेतना) एव घनः। (जहाँ केवल और केवल शुद्ध चेतना ही भरी पड़ी है।)

81. आनंदघन: आनंदस्य घनः इति आनंदघनः। (परम सुख और आनंद का ठोस स्वरूप।)

82. प्राणेश्वर: प्राणानां ईश्वरः इति प्राणेश्वरः। (हमारे प्राणों को सत्ता देने वाला परम देव।)

83. अव्यक्तमूर्ति: अव्यक्ता मूर्तिः यस्य सः। (जिसका विग्रह निराकार और सूक्ष्म है।)

84. परमज्योति: परमा च असौ ज्योतिः। (वह परम दिव्य प्रकाश जिसके सामने सूर्य भी फीका है।)

85. अभेद्य: भेत्तुम् न शक्यते इति अभेद्यः। (जिसके टुकड़े नहीं किए जा सकते।)

86. अदाह्य: दग्धुं न शक्यते इति अदाह्यः। (जिसे अग्नि कभी जला नहीं सकती।)

87. अक्लेद्य: क्लेदयितुं न शक्यते इति अक्लेद्यः। (जिसे जल कभी गीला या नष्ट नहीं कर सकता।)

88. अशोषblock: शोषयितुं न शक्यते इति अशोष्यः। (जिसे वायु कभी सुखा नहीं सकती।)

89. अशब्दा: न शब्दः यस्य तत्। (जो वाणी और ध्वनियों के जाल से परे है।)

90. अस्पर्शा: न स्पर्शः यस्य तत्। (जिसका कोई भौतिक स्पर्श नहीं हो सकता।)

91. अरूपा: न रूपं यस्य तत्। (जो किसी रंग या रूप में नहीं बंधा है।)

92. अरसा: न रसः यस्य तत्। (सांसारिक स्वादों से परे आत्म-रस स्वरूप।)

93. अगन्धा: न गन्धः यस्य तत्। (जिसमें कोई भौतिक गंध नहीं है।)

94. चिन्मात्र: चित् एव चिन्मात्रम्। (जो केवल ज्ञान मात्र ही है।)

95. ज्ञानगोचर: ज्ञानेन गोचरः इति ज्ञानगोचरः। (जो केवल शुद्ध आत्मज्ञान से ही अनुभव में आता है।)

96. अविकृत: न विकृतं इति अविकृतम्। (जिसमें कभी कोई तोड़-फोड़ या विकार नहीं होता।)

97. सर्वेश्वर: सर्वेषां ईश्वरः इति सर्वेश्वरः। (जो ईश्वरों और देवताओं का भी स्वामी है।)

98. परमेश: परमः च असौ ईशः। (सर्वोच्च सत्ता।)

99. परमकारण: परं च तत् कारणम्। (सभी कारणों का सबसे मूल कारण।)

100. अक्षय: न क्षीयते इति अक्षयः। (जिसका अनंत भंडार कभी खाली नहीं होता।)

भाग 2: जीवात्मा, चेतना और अंतःकरण (101-200)

101. पुरुष: पुरि शयनात् पुरुषः। (जो शरीर रूपी नगर के भीतर अंतर्यामी रूप में निवास करता है।)

102. चित्त: चेतति इति चित्तम्। (अंतःकरण का वह भाग जो स्मृतियों को संचित रखता है।)

103. अहंकार: अहम् इति करोति इति अहंकारः। ("मैं कर्ता हूँ, यह मेरा है" ऐसा झूठा तादात्म्य बनाने वाली वृत्ति।)

104. बुद्धि: बोधति निश्चिनोति अनया इति बुद्धिः। (वह शक्ति जिसके द्वारा सही-गलत का निश्चय किया जाता है।)

105. जीव: जीवति प्राणान् धारयति इति जीवः। (जो अज्ञानवश सुख-दुःख का अनुभव करते हुए प्राण धारण करता है।)

106. साक्षी: साक्षात् पश्यति इति साक्षी। (जो तटस्थ होकर मन और संसार के खेल को केवल देखता है।)

107. अंतःकरण: अन्तः स्थितं करणम् इति अन्तःकरणम्। (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की आंतरिक प्रणाली।)

108. क्षेत्रज्ञ: क्षेत्रं जानाति इति क्षेत्रज्ञः। (शरीर के भीतर चल रही हर हलचल को जानने वाली चेतना।)

109. नामरूप: नाम च रूपं च इति नामरूपम्। (संसार का वह स्वरूप जो केवल 'नाम' और 'आकार' के कारण सत्य लगता है।)

110. मन: मन्यते इति मनः। (संकल्प और विकल्प करने वाली अंतःकरण की चंचल तरंग।)

111. जीवात्मा: जीवः च असौ आत्मा इति जीवात्मा। (शरीर के बंधनों में बंधी हुई सूक्ष्म चेतना।)

112. करण: क्रियते अनेन इति करणम्। (वह साधन जिसके द्वारा कोई क्रिया की जाती है; जैसे ज्ञानेन्द्रियाँ।)

113. द्रष्टा: पश्यति इति द्रष्टा। (संसार के दृश्यों को अनुभव करने वाला मूल चेतन।)

114. भोक्ता: भुङ्क्ते इति भोक्ता। (सुख और दुखों के फलों को चखने वाला जीव।)

115. कर्ता: करोति इति कर्ता। (कर्मों को अंजाम देने वाला अहंता-युक्त पुरुष।)

116. चित्स्वभाव: चितः स्वभावः इति चित्स्वभावः। (चेतना का मूल और शुद्ध स्वभाव।)

117. चिदाभास: चितः आभासः इति चिदाभासः। (बुद्धि पर पड़ने वाला शुद्ध चेतना का प्रतिबिंब।)

118. क्षेत्र: क्षीयते त्रायते च इति क्षेत्रम्। (यह परिवर्तनशील भौतिक शरीर जिसे शास्त्रों में खेत कहा गया है।)

119. सूक्ष्मशरीर: सूक्ष्मं च तत् शरीरम्। (मन, बुद्धि, प्राणों से बना अदृश्य शरीर जो मरने के बाद भी साथ जाता है।)

120. कारणशरीर: कारणं च तत् शरीरम्। (अज्ञान और वासनाओं से बना वह मूल शरीर जिससे बाकी दोनों शरीर जन्म लेते हैं।)

121. स्थूलशरीर: स्थूलं च तत् शरीरम्। (हाड़-मांस से बना पाँच तत्वों का यह दृश्य शरीर।)

122. प्राण: प्राणिति इति प्राणः। (शरीर को जीवित रखने वाली मुख्य प्राण ऊर्जा।)

123. अपान: अपानयति इति अपानः। (शरीर के अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने वाली वायु।)

124. व्यान: व्यानो व्यापी इति व्यानः। (पूरे शरीर में रक्त और ऊर्जा का संचार करने वाली वायु।)

125. उदान: उन्नयति इति उदानः। (कंठ में स्थित वायु जो मृत्यु के समय जीवात्मा को शरीर से बाहर ले जाती है।)

126. समान: समं नयति इति समानः। (नाभि में स्थित वायु जो भोजन को पचाकर रस को समान रूप से बांटती है।)

127. ज्ञानशक्ति: ज्ञानस्य शक्तिः इति ज्ञानशक्तिः। (जानने और समझने की मानसिक सामर्थ्य।)

128. इच्छाशक्ति: इच्छायाः शक्तिः इति इच्छाशक्तिः। (किसी कार्य को करने का संकल्प जगाने वाली शक्ति।)

129. क्रियाशक्ति: क्रियायाः शक्तिः इति क्रियाशक्तिः। (विचारों को कर्म में बदलने की शारीरिक व प्राणिक शक्ति।)

130. ज्ञानेन्द्रिय: ज्ञायते आभिः इति ज्ञानेन्द्रियाणि। (संसार का ज्ञान कराने वाले 5 अंग: आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा।)

131. कर्मेन्द्रिय: क्रियते आभिः इति कर्मेन्द्रियाणि। (कर्म करने वाले 5 अंग: हाथ, पैर, वाणी, लिंग, गुदा।)

132. विज्ञानात्मा: विज्ञानेन युक्तः आत्मा। (बुद्धि के स्तर पर स्थित जीवात्मा का रूप।)

133. प्राणात्मा: प्राणैः युक्तः आत्मा। (प्राणों के माध्यम से क्रियाशील चेतना।)

134. मनोमय: मनसा प्रचुरः इति मनोमयः। (विचारों और भावनाओं के ताने-बाने से बना कोष।)

135. अन्नमय: अन्नेन निर्मितः कोषः। (अन्न और भोजन से पोषित होने वाला स्थूल शरीर।)

136. आनंदमय: आनंदप्रचुरः कोषः। (गहरी सुषुप्ति या समाधि में आनंद का अनुभव कराने वाली परत।)

137. अविद्याग्रंथि: अविद्यायाः ग्रन्थिः (गाँठ)। (हृदय की वह अज्ञान की गाँठ जो जीव को शरीर से बांधती है।)

138. हृदयगुहा: हृदयस्य गुहा (गुफा)। (हृदय का वह सूक्ष्म स्थान जहाँ परमात्मा का निवास माना जाता है।)

139. चेतन: चेतयते इति चेतनः। (जो जीवित है, जिसमें संवेदना और होश है।)

140. जड़: न चेतयते इति जड़ः। (जिसमें अपना कोई होश या गति नहीं है, जैसे पत्थर या भौतिक वस्तु।)

141. वासना: वास्यते चित्तं अनया इति वासना। (पूर्व कर्मों के कारण मन में दबी हुई गहरी इच्छाएँ या संस्कार।)

142. वृत्ति: वर्तते इति वृत्तिः। (मन के तालाब में उठने वाली विचारों की लहर।)

143. सत्त्व: सीदति अस्मिन् इति सत्त्वम्। (पवित्रता, प्रकाश और ज्ञान देने वाला गुण।)

144. रजस: रञ्जयति इति रजः। (चंचलता, इच्छा और कर्म की ओर भगाने वाला गुण।)

145. तमस: तम्यते अनया इति तमः। (अज्ञान, आलस्य और अंधकार फैलाने वाला गुण।)

146. अहंता: अहम् इति भावः अहंता। (स्वयं को एक अलग पहचान या शरीर मानने का भ्रम।)

147. ममता: मम इति भावः ममता। (संसार की वस्तुओं या व्यक्तियों को "मेरा" समझने की आसक्ति।)

148. प्रमादा: प्रमद्यते इति प्रमादः। (कर्तव्य के प्रति आलस्य या असावधानी।)

149. मोहा: मुह्यते अनेन इति मोहः। (नश्वर वस्तुओं को सच मानकर उनसे चिपक जाने का अज्ञान।)

150. काम: काम्यते इति कामः। (इन्द्रियों के भोगों को भोगने की तीव्र लालसा।)

151. क्रोध: क्रुध्यते इति क्रोधः। (मन के अनुकूल काम न होने पर उठने वाला गुस्सा।)

152. लोभ: लुभ्यते इति लोभः। (चीजों को और अधिक इकट्ठा करने की कभी न मिटने वाली भूख।)

153. मद: माद्यते अनेन इति मदः। (धन, रूप या जाति का घमंड या नशा।)

154. मात्सर्य: मत्सराणां भावः मात्सर्यम्। (दूसरों की उन्नति देखकर भीतर ही भीतर जलना, ईर्ष्या।)

155. राग: रज्यते अस्मिन् इति रागः। (सुख देने वाली चीजों के प्रति मन का झुकाव या खिंचाव।)

156. द्वेष: द्विष्यते अनेन इति द्वेषः। (दुःख देने वाली चीजों या व्यक्तियों के प्रति नफ़रत।)

157. अभिनिवेश: भयं जीविते आसक्तिः च। (मरने का अनजाना भय और शरीर से चिपके रहने की जिद।)

158. अविद्या: न विद्या इति अविद्या। (जो अनित्य है उसे नित्य समझना, अज्ञान।)

159. अस्मिता: अहम् अस्मि इति बुद्धिः अस्मिता। (आत्मा और बुद्धि को एक ही समझ लेना।)

160. संस्कार: संस्क्रियते चित्तं अनेन। (कर्मों के वे सूक्ष्म बीज जो चित्त पर गहरे छप जाते हैं।)

161. जाग्रत: जाग्रति इति जाग्रत अवस्था। (इन्द्रियों के माध्यम से बाहरी संसार को देखने की जागृत स्थिति।)

162. स्वप्न: सुप्तौ दृश्यते इति स्वप्नः। (नींद में मन की कल्पनाओं का संसार देखना।)

163. सुषुप्ति: गाढ़निद्रा सुषुप्तिः। (बिना किसी सपने की वह गहरी नींद जहाँ केवल अज्ञान और सुख का भान होता है।)

164. तुरीय: चतुर्थः अवस्था तुरीयः। (तीनों अवस्थाओं से परे शुद्ध आत्म-साक्षात्कार की स्थिति।)

165. अमन: मनसः अभावः इति अमनः। (विचारों के पूरी तरह शांत हो जाने पर मन का विलीन होना।)

166. उन्मनी: उद्गतं मनः यस्यां सा। (ध्यान की वह उच्च अवस्था जहाँ मन विलीन हो जाता है।)

167. ऋतम्भरा: ऋतं बिभर्ति इति ऋतम्भरा। (समाधि में सत्य को ग्रहण करने वाली विशेष प्रज्ञा।)

168. विवेकख्याति: विवेकस्य ख्यातिः (ज्ञानम्)। (प्रकृति और पुरुष के बिलकुल अलग होने का स्पष्ट अनुभव।)

169. प्रत्यक्चेतना: प्रत्यक् (अन्तः) चेतना। (बाहर भटकने के बजाय भीतर की ओर मुड़ी हुई चेतना।)

170. अन्तःप्रज्ञा: अन्तः स्थिता प्रज्ञा। (भीतर से उठने वाला दिव्य ज्ञान या अंतःप्रेरणा।)

171. सत्त्वशुद्धि: सत्त्वस्य (अन्तःकरणस्य) शुद्धिः। (मन का पूरी तरह पवित्र और निर्मल हो जाना।)

172. चित्तप्रसाद: चित्तस्य प्रसादः (शान्तिः)। (मन का प्रसन्न, निर्मल और स्थिर हो जाना।)

173. अध्यात्म: आत्मनि इति अध्यात्मम्। (स्वयं की आत्मा के विषय में विचार या यात्रा करना।)

174. प्रत्यगात्मा: प्रत्यक् अञ्चति इति प्रत्यगात्मा। (भीतर रहने वाली शुद्ध अंतरात्मा।)

175. अविद्यावृत्ति: अविद्यायाः वृत्तिः। (अज्ञान के कारण मन में उठने वाले सांसारिक विचार।)

176. चिच्छक्ति: चितः शक्तिः इति चिच्छक्तिः। (चेतना की अपनी अंतर्निहित सामर्थ्य।)

177. सूक्ष्मदृष्टि: सूक्ष्मा च सा दृष्टिः। (चीजों के बाहरी रूप को छोड़कर उनके छिपे मर्म को देखने वाली बुद्धि।)

178. आत्मबोध: आत्मनः बोधः इति आत्मबोधः। (मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ, इस सत्य का साक्षात अनुभव।)

179. विदेहभाव: विदेहस्य भावः विदेहभावः। (शरीर में रहते हुए भी उसके होने के अहसास से मुक्त होना।)

180. चिन्मात्रता: चित्-मात्रस्य भावः। (केवल ज्ञान या होश के स्वरूप में टिक जाना।)

181. एकता: एकस्य भावः एकता। (जीवात्मा और परमात्मा के बीच के अंतर का पूरी तरह समाप्त होना।)

182. चित्तलय: चित्तस्य लयः (विनाशः)। (मन की चंचलता का मूल चेतना में विलीन हो जाना।)

183. अविद्यानाश: अविद्यायाः नाशः। (अज्ञान के परदे का पूरी तरह फट जाना।)

184. हृदयग्रंथिभेद: हृदयग्रन्थेः भेदः (नाशः)। (हृदय के अज्ञान की गाँठ का खुल जाना।)

185. विशुद्धि: विशेषेण शुद्धिः इति विशुद्धिः। (चित्त और प्राणों की अत्यंत गहरी शुद्धि।)

186. आत्मतृप्ति: आत्मना तृप्तिः इति आत्मतृप्तिः। (बिना किसी बाहरी वस्तु के स्वयं में ही संतुष्ट रहना।)

187. अहंभावत्याग: अहंभावस्य त्यागः। (झूठे "मैं" के घमंड को पूरी तरह छोड़ देना।)

188. अमृतबिन्दुः अमृतस्य बिन्दुः। (ध्यान में टपकने वाला दिव्य आनंद का रस।)

189. सदाजागृतः सदा जागर्ति इति सदाजागृतः। (जो मोह की नींद में कभी नहीं सोता, सदा होश में रहता है।)

190. अशरीरीः न शरीरी इति अशरीरी। (स्वयं को भौतिक पिंजरे से मुक्त अनुभव करना।)

191. प्रज्ञाचक्षुः प्रज्ञा एव चक्षुः यस्य सः। (जिसके पास ज्ञान की आंतरिक आँख खुली हुई है।)

192. दिव्यचक्षुः दिव्यं च तत् चक्षुः। (वह अलौकिक दृष्टि जिससे सूक्ष्म जगत और परमात्मा को देखा जा सके।)

193. आत्मसंयमः आत्मनः संयमः इति आत्मसंयमः। (अपनी इन्द्रियों और मन को अपने वश में रखना।)

194. मनोनिग्रहः मनसः निग्रहः (नियन्त्रणम्)। (भटकते हुए मन को बलपूर्वक वश में करना।)

195. चित्तवृत्तिनिरोधः चित्तवृत्तीनां निरोधः। (मन की सब लहरों को शांत करके स्थिर करना, यही योग है।)

196. चिद्विलासः चितः विलासः (खेल)। (इस संसार को चेतना का ही एक सुंदर खेल समझना।)

197. अन्तःप्रकाशः अन्तः स्थितः प्रकाशः। (भीतर जगमगाने वाला ज्ञान का दिव्य आलोक।)

198. सदाशिवत्वः सदाशिवस्य भावः। (अपने भीतर शिवत्व या परम कल्याणकारी स्थिति का अनुभव।)

199. कूटस्थचेतनाः कूटस्थे स्थिता चेतना। (संसार के बदलावों के बीच अपनी अचल आत्मा में टिकना।)

200. कैवल्यज्योतिः कैवल्यस्य ज्योतिः। (मोक्ष के समय प्रकट होने वाला शुद्ध प्रकाश।)

भाग 3: वैराग्य, प्रज्ञा और दैवी गुण (201-300)

201. वैराग्यः विगतः रागः यस्मात् तत् वैराग्यम्। (जिसके मन से संसार के प्रति आसक्ति निकल चुकी हो।)

202. विवेकः विविच्यते सत्-असती अनेन इति विवेकः। (सत्य और असत्य को अलग-अलग कर देने वाली प्रज्ञा।)

203. श्रद्धाः श्रत् दधाति इति श्रद्धा। (गुरु और शास्त्रों के वचनों पर हृदय का पूर्ण विश्वास।)

204. तितिक्षाः सोढुं इच्छा इति तितिक्षा। (बिना किसी शिकायत के सुख-दुःख और द्वंद्वों को सहन करना।)

205. मुमुक्षुः मोक्तुं इच्छा यस्य सः मुमुक्षुः। (जिसके मन में मोक्ष पाने की तीव्र व्याकुलता हो।)

206. संतोषः सम्यक् तुष्यति अनेन इति सन्तोषः। (प्रारब्ध से जो मिले, उसी में मन का तृप्त रहना।)

207. प्रज्ञाः प्रकृष्टं जानाति अनया इति प्रज्ञा। (वह जागृत आत्म-बुद्धि जो केवल सत्य को ग्रहण करती हैं।)

208. उपरतिः उपरम्यतेविषयेभ्यः अनया इति उपरतिः। (इन्द्रियों का सांसारिक भोगों से अपने आप शांत हो जाना।)

209. शमः शम्यते मनः अनेन इति शमः। (मन को संसार की वासनाओं से हटाकर ईश्वर में शांत करना।)

210. दमः दम्यन्ते बाह्येन्द्रियाणि अनेन इति दमः। (बाहरी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को कुमार्ग से रोकना।)

211. आर्जवम्ः ऋजोः भावः आर्जवम्। (मन, वाणी और कर्म में पूरी सरलता और सीधापन होना।)

212. अक्रोधः क्रोधस्य अभावः इति अक्रोधः। (भारी अपकार होने पर भी मन में गुस्सा पैदा न होना।)

213. मार्दवम्ः मृदोः भावः मार्दवम्। (स्वभाव और वाणी में कोमलता व विनम्रता होना।)

214. ह्रीः: लज्जा इति hreeh। (शास्त्र-मर्यादा के विरुद्ध काम करते समय भीतर उठने वाला स्वाभाविक संकोच।)

215. अलोलुप्त्वम्ः लोलुपतायाः अभावः इति अलोलुप्त्वम्। (भोग सामने होने पर भी इन्द्रियों में लालच का न होना।)

216. तेजः: तिज निशाने (तेजस्वी प्रभावः)। (चरित्र और तपस्या के कारण चेहरे पर छलकने वाली दिव्य आभा।)

217. धृतिः: धार्यते विपत्तौ चित्तं यया सा धृतिः। (भारी विपत्ति के समय भी मन का धैर्य बनाए रखना।)

218. सौम्यत्वम्ः सोमस्य अयम् इति सौम्यः। (मन और वाणी में चंद्रमा जैसी शीतलता होना।)

219. **apaisunama:** पैशुनस्य अभावः इति अपैशुनम्। (पीठ पीछे किसी की बुराई या चुगली न करने का संस्कार।)

220. **अद्रोह:** द्रोहस्य अभावः इति अद्रोहः। (मन में कभी किसी का अहित या विनाश करने का विचार न आना।)

221. **अनुसूया:** न असूया यस्यां सा। (दूसरों के गुणों में दोष न ढूंढना; ईर्ष्या रहित होना।)

222. **निर्ममत्वम्:** निर्गतं ममत्वं यस्मात् तत्। ("यह मेरा है" इस मालिकाना भाव का मिट जाना।)

223. **वीतराग:** विगतः रागः यस्मात् सः। (वह साधक जिसके भीतर से भोगों के प्रति आकर्षण समाप्त हो चुका हो।)

224. **गुणातीत:** गुणान् अतीतः इति गुणातीतः। (जो प्रकृति के तीनों गुणों के बंधनों से ऊपर उठ चुका हो।)

225. **अमानित्वम्:** मानित्वस्य अभावः इति अमानित्वम्। (अपने लिए मान-सम्मान या आदर पाने की इच्छा का न होना।)

226. **अदम्भित्वम्:** दम्भित्वस्य अभावः इति अदम्भित्वम्। (धार्मिकता या बड़प्पन का झूठा दिखावा न करना।)

227. **क्षमा:** क्षमते इति क्षमा। (दूसरों के द्वारा किए गए अपराधों को उदारता से भूल जाना।)

228. **सौचम्:** शुचेः भावः शौचम्। (बाहरी और आंतरिक पवित्रता बनाए रखना।)

229. **स्थैर्यम्:** स्थिरस्य भावः स्थैर्यम्। (आध्यात्मिक मार्ग पर बिना डिगे लगातार आगे बढ़ते रहना।)

230. **इन्द्रियनिग्रह:** इन्द्रियाणां निग्रहः (नियन्त्रणम्)। (इन्द्रियों को मनमाने भोगों में बहने से रोकना।)

231. **अनहंकार:** अहंकारस्य अभावः इति अनहंकारः। (झूठे घमंड और कर्तापन के भाव से रहित होना।)

232. **विराग:** विगतः रागः इति विरागः। (संसार की नश्वरता को देखकर भोगों से अरुचि होना।)

233. **त्याग:** त्यजति इति त्यागः। (आसक्ति और फल की इच्छा को पूरी तरह छोड़ देना।)

234. **शान्तिः:** शम्यते इति शान्तिः। (मन की सब चिंताओं और अशांति का पूरी तरह शांत होना।)

235. **दया:** परदुःखे सति तदपनेतुं इच्छा। (दूसरों के दुःख को दूर करने की स्वाभाविक तड़प।)

236. **अकृपणता:** कृपणतायाः अभावः इति अकृपणता। (उदार हृदय होना, संकीर्ण सोच का न होना।)

237. **धीरज:** धियं रक्चति इति धीरजः। (मुश्किल समय में अपनी बुद्धि को स्थिर रखना।)

238. **संतोषी:** सन्तोषः अस्ति यस्य सः। (जो हर हाल में तृप्त रहता है।)

239. **सरलता:** सरलस्य भावः सरलता। (बिना किसी कपट या टेढ़ेपन का सीधा स्वभाव।)

240. **विनीत:** विशेषेण नीतः इति विनीतः। (जो पूरी तरह अहंकार रहित और शालीन है।)

241. **मुदिता:** मोदते इति मुदिता। (दूसरों की उन्नति देखकर मन में प्रसन्नता का होना।)

242. **उपेक्षा:** उपेक्चते इति उपेक्चा। (दुष्टों या बाधाओं के प्रति तटस्थ रहना, विचलित न होना।)

243. **करुणा:** कृपार्द्रं हृदयं यया सा। (दीन-दुखियों के लिए हृदय का पिघल जाना।)

244. **अद्वेष्टा:** द्वेषं न करोति इति अद्वेष्टा। (किसी भी जीव से नफ़रत या बैर न रखना।)

245. **मैत्री:** मित्रस्य भावः मैत्री। (संसार के सभी जीवों के प्रति भाईचारे और मित्रता का भाव।)

246. **निर्मोही:** निर्गतः मोहः यस्मात् सः। (जो रिश्तों और वस्तुओं के झूठे जाल में नहीं फंसता।)

247. **अलोभी:** लोभः न विद्यते यस्य। (जो लालच के कीचड़ से सर्वथा दूर है।)

248. **सत्यनिष्ठ:** सत्ये निष्ठा यस्य सः। (जो हर हाल में सत्य का ही साथ देता है।)

249. **अभय:** भयं न विद्यते यस्मात् तत्। (जो संसार के किसी भी भय से डरता नहीं, निर्भय है।)

250. **सत्त्वसंशुद्धि:** सत्त्वस्य सम्यक् शुद्धिः। (अंतःकरण को पूरी तरह सात्विक और पवित्र बनाना।)

251. ज्ञानयोगव्यवस्थिति: ज्ञाने योगे च व्यवस्थितिः। (ज्ञान और ध्यान के मार्ग पर मजबूती से टिकना।)

252. स्वाध्याय: स्वस्य अध्ययनम्। (वेदांत ग्रंथों का पाठ और आत्म-निरीक्षण।)

253. अहिंसा: न हिंसा अहिंसा। (मन, वचन और कर्म से किसी को दुःख न देना।)

254. सत्य: सत्सु साधु इति सत्यम्। (जो जैसा है उसे वैसा ही बोलना और स्वीकार करना।)

255. अस्तेय: चौर्यस्य अभावः इति अस्तेयम्। (किसी दूसरे की चीज़ को चुराने की इच्छा न करना।)

256. अपरिग्रह: संचयस्य अभावः इति अपरिग्रहः। (आवश्यकता से अधिक सामान इकट्ठा न करना।)

257. ब्रह्मचर्य: ब्रह्मणि चरति इति ब्रह्मचर्यम्। (अपनी ऊर्जा को ब्रह्मज्ञान की ओर मोड़ना, वीर्य रक्षा।)

258. निस्पृह: न स्पृहा यस्य सः। (जिसके मन में किसी भोग को पाने की ललक नहीं है।)

259. जितेन्द्रिय: जितानि इन्द्रियाणि येन सः। (जिसने अपनी सब इन्द्रियों को जीत लिया है।)

260. अध्यात्मरति: अध्यात्मनि रतिः (प्रेम) यस्य। (जिसका मन केवल आत्म-चर्चा में ही रमता है।)

261. प्रसन्नात्मा: प्रसन्नः आत्मा यस्य सः। (जिसकी अंतरात्मा सदा आनंद से सराबोर रहती है।)

262. समलोष्टाश्मकांचन: समं लोष्ट-अश्म-काञ्चनं यस्य। (जिसके लिए मिट्टी का ढेला, पत्थर और सोना सब बराबर हैं।)

263. तुल्यनिन्दास्तुति: तुल्या निन्दा स्तुतिः च यस्य। (जिसके लिए अपनी बड़ाई और बुराई दोनों एक समान हैं।)

264. उदासीन: उत्-आसीनः (तटस्थः)। (संसार के झगड़ों और राजनीति से ऊपर उठकर तटस्थ बैठना।)

265. गतसङ्ग: गतः सङ्गः (आसक्तिः) यस्य सः। (जिसके सब सांसारिक जुड़ाव टूट चुके हैं।)

266. धीरो: धियं न जहाति इति धीरः। (विपत्तियों में भी धैर्य न खोने वाला महापुरुष।)

267. शुचि: पवित्रः इति शुचिः। (भीतर और बाहर से पूरी तरह निर्मल।)

268. दक्ष: चतुरः कुशलः इति दक्षः। (साधना के नियमों का पालन करने में अत्यंत कुशल।)

269. सर्वारम्भपरित्यागी: सर्वान् आरम्भान् परित्यजति यः। (अहंकार से भरे नए-नए सांसारिक कार्यों को शुरू न करने वाला।)

270. अनपेक्षित: न अपेक्चते इति अनपेक्चितः। (जो किसी भी व्यक्ति से कोई उम्मीद नहीं रखता।)

271. समचित्तत्व: समं चित्तं यस्य तस्य भावः। (सुख और दुःख दोनों में मन का एक जैसा रहना।)

272. अनन्यभाव: न अन्यः भावः इति अनन्यभावः। (केवल एक ईश्वर को छोड़कर कहीं और मन न भटकाना।)

273. विविक्तदेशसेवित्वम्: विविक्ते देशे स्थातुं स्वभावः। (एकांत और शांत स्थानों में रहने का प्रेम।)

274. अरतिर्जनसंसदि: जनसमूहे अरतिः (अरुचिः)। (सांसारिक और मतलबी लोगों की भीड़ से दूर रहने का भाव।)

275. तत्वज्ञानार्थदर्शनम्: तत्त्वज्ञानस्य अर्थे दर्शनम्। (सत्य ज्ञान के लक्ष्य को सदा अपनी आँखों के सामने रखना।)

276. अचलता: न चलनशीलता इति अचलता। (अपने ऊंचे चरित्र और संकल्प पर मजबूती से टिके रहना।)

277. आत्मविनिग्रह: आत्मनः विशेषेण निग्रहः। (अपने मन को कुमार्ग पर जाने से पूरी तरह रोकना।)

278. अनासक्ति: न आसक्तिः इति अनासक्तिः। (संसार में रहते हुए भी कीचड़ में कमल की तरह निर्लेप रहना।)

279. परमशान्ति: परमा च सा शान्तिः। (वह परम शांति जो समाधि के बाद कभी भंग नहीं होती।)

280. वैराग्यवान: वैराग्यं विद्यते यस्य सः। (जो वैराग्य की जीती-जागती मूरत है।)

281. निर्वैर: वैरस्य अभावः इति निर्वैरः। (जिसका संसार में कोई शत्रु नहीं है और जो सबसे प्रेम करता है।)

282. कृतकृत्य: कृतं कृत्यं येन सः। (जिसने मानव जन्म का असली लक्ष्य पा लिया है, अब कुछ करना बाकी नहीं।)

283. तृप्त: तृप्यति इति तृप्तः। (जिसकी संसार की सब वासनाएँ हमेशा के लिए शांत हो चुकी हैं।)

284. समदर्शी: समं पश्यति इति समदर्शी। (जो राजा और रंक, शेर और गाय सबमें एक ही आत्मा देखता है।)

285. अविचलित: न विचलितः इति अविचलितः। (भारी तूफ़ान आने पर भी जो अपनी साधना से पीछे नहीं हटता।)

286. पवित्र आत्मा: पवित्रा च सा आत्मा। (सब विकारों से मुक्त शुद्ध अंतःकरण।)

287. महामना: महत् मनः यस्य सः। (विशाल और उदार सोच रखने वाला साधक।)

288. दृढ़निश्चयी: दृढः निश्चयः यस्य सः। (जिसका आध्यात्मिक संकल्प वज्र की तरह मजबूत है।)

289. सदाचारी: सतः आचारः यस्य सः। (जो शास्त्रों के अनुसार पवित्र आचरण करता है।)

290. अविकार्य: विकर्तुं न शक्यते इति। (जिसके ऊंचे चरित्र को कोई डिगा नहीं सकता।)

291. ब्रह्मनिष्ठ: ब्रह्मणि निष्ठा यस्य सः। (जिसकी बुद्धि चौबीसों घंटे केवल ब्रह्म में टिकी रहती है।)

292. ज्ञानदीपक: ज्ञानस्य दीपकः। (जिसके भीतर ज्ञान का दिव्य दीया जल चुका है।)

293. सत्यवादी: सत्यं वदति इति सत्यवादी। (जो केवल और केवल सच ही बोलता है।)

294. निरहंकारी: अहंकार-रहितः इति निरहंकारी। (जो स्वयं को दास या सेवक मानता है, घमंड नहीं करता।)

295. आत्मनिष्ठ: आत्मनि निष्ठा यस्य सः। (जो शरीर को भूलकर अपनी आत्मा में मस्त रहता है।)

296. सात्त्विकता: सत्त्वस्य भावः सात्त्विकता। (चित्त में सात्विक गुणों की प्रचुरता होना।)

297. जितक्रोध: जितः क्रोधः येन सः। (जिसने गुस्से के राक्षस को हमेशा के लिए वश में कर लिया है।)

298. जितसंग: जितः सङ्गः येन सः। (जिसने बुरी संगति और मोह को जीत लिया है।)

299. मर्यादावादी: मर्यादां रक्षति इति। (जो शास्त्रों और समाज की सुंदर मर्यादाओं का पालन करता है।)

300. उदार: उद्-आर (विशाल हृदय)। (जिसका दिल सबके लिए खुला है, जो संकीर्ण नहीं है।)

भाग 4: साधना, योग और चक्र विज्ञान (301-400)

301. समाधि: समान धियते इति समाधि। (जहाँ बुद्धि या चित्त परमात्मा में समान रूप से स्थापित हो जाए।)

302. गुरु: अंधकारं रुणद्धि इति गुरुः। (जो साधक के भीतर के अज्ञान-अंधकार को मिटाकर प्रकाश फैला दे।)

303. मंत्र: मननात् त्रायते इति मन्त्रः। (जिसके बार-बार मनन या जप से मन संसार के भयों से मुक्त हो जाए।)

304. योग: युज्यते अनेन इति योगः। (जिसके द्वारा जीवात्मा का परमात्मा से मिलन हो।)

305. ध्यान: ध्यै चिन्तायाम् (तैलधारावत् वृत्तिः)। (ध्येय में चित्त की वृत्ति का बिना रुकावट के लगातार प्रवाहित होना।)

306. तप: तप्यते अनेन इति tapah। (अपने लक्ष्य के लिए शरीर, मन और इन्द्रियों को शुद्ध करना।)

307. प्राणायाम: प्राणस्य आयामः इति प्राणायामः। (जीवन शक्ति अर्थात श्वास की गति को वश में करना।)

308. प्रत्याहार: इन्द्रियाणां विषयेभ्यः प्रतिनिवर्तनम्। (बाहरी विषयों में भागती हुई इन्द्रियों को अंतर्मुखी करना।)

309. धारणा: धार्यते चित्तं यस्मिन् सा धारणा। (चित्त को किसी एक पवित्र स्थान या ध्येय पर रोक कर रखना।)

310. स्वाध्याय: स्वस्य अध्ययनं इति स्वाध्यायः। (आत्म-स्वरूप को जानने के लिए ग्रंथों का पाठ और आत्म-निरीक्षण करना।)

311. जपाः जकारो जन्मविच्छेदः पकारो पापनाशनः। (वह नाम आवर्तन जो जन्म-मरण को काटे और पापों का नाश करे।)

312. अनुष्ठानः अनु तिष्ठति इति अनुष्ठानम्। (किसी साधना को निश्चित समय और कड़े नियमों के तहत पूरा करना।)

313. कुण्डलिनीः कुण्डलं विद्यते यस्यां सा कुण्डलिनी। (मूलाधार में सोई हुई वह दिव्य सुषुप्त आध्यात्मिक ऊर्जा।)

314. सुषुम्नाः सुष्ठु म्नायते इति सुषुम्ना। (रीढ़ के मध्य में स्थित वह नाड़ी, जो समाधि की ओर ले जाती है।)

315. अनाहतः न आहतः इति अनाहतः। (हृदय चक्र में बिना किसी आघात के स्वतः गूँजने वाली दिव्य ध्वनि।)

316. खेचरीः खे चरति इति खेचरी। (वह योग मुद्रा जिससे चित्त उच्च चेतना में विचरण करने लगता है।)

317. उन्मनीः उद्गतं मनो यस्यां सा। (वह अवस्था जहाँ चंचल मन पूरी तरह शांत होकर 'अमन' हो जाता है।)

318. अजपाः न जप्यते इति अजपा। (वह जप जो श्वास की गति के साथ स्वाभाविक रूप से भीतर चलता रहता है।)

319. आज्ञाचक्रः आज्ञायते परमगुरुवचनं यत्र तत्। (दोनों भौहों के बीच स्थित छठा सूक्ष्म चक्र।)

320. सहस्रारः सहस्रं आराः यस्मिन् तत्। (मस्तिष्क के शीर्ष पर स्थित चक्र, जहाँ शिव-शक्ति का मिलन होता।)

321. कुम्भकः कुम्भवत् प्राणानं स्थिरीकरणम्। (श्वास को भीतर या बाहर रोककर मन को स्थिर करना।)

322. मूलबंधः मूले क्रियते यः बन्धः। (प्राण ऊर्जा को नीचे गिरने से रोककर ऊपर की ओर मोड़ने की क्रिया।)

323. ज्योतिर्ध्यानः ज्योतिषः ध्यानम् इति ज्योतिर्ध्यानम्। (हृदय या आज्ञा चक्र में ईश्वर के तेजोमय प्रकाश का चिंतन।)

324. नादानुसंधानः नादस्य अनुसंधानम्। (समाधि के लिए भीतर गूँज रहे अनहद नाद को ध्यान से सुनना।)

325. आसनः आस्यते अनेन इति आसनम्। (शरीर को बिना हिलाए-डुलाए स्थिर और सुखपूर्वक बैठाने की स्थिति।)

326. यमाः यम्यते अनेन इति यमः। (साधना के 5 सामाजिक नियमः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।)

327. नियमः नीयते अनेन इति नियमः। (साधना के 5 व्यक्तिगत नियमः शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान।)

328. ईश्वरप्रणिधानः ईश्वरे भक्तिविशेषः। (अपने सब कर्मों और अहंकार को पूरी तरह ईश्वर के चरणों में सौंप देना।)

329. मूलाधारः मूलं च तत् आधारः। (रीढ़ की हड्डी के अंत में स्थित पहला चक्र, जहाँ कुण्डलिनी सोई होती है।)

330. स्वाधिष्ठानः स्वे अधिष्ठाने स्थितम्। (नाभि से थोड़ा नीचे स्थित दूसरा सूक्ष्म चक्र।)

331. मणिपूरः मणीनां पूरं (स्थानम्)। (नाभि चक्र, जो अग्नि और ऊर्जा का केंद्र है।)

332. विशुद्धचक्रः विशेषेण शुद्धं चक्रम्। (कंठ में स्थित पाँचवाँ चक्र, जो शुद्धि और कला का केंद्र है।)

333. पूरकः पूर्यते वायुः येन सः। (प्राणायाम में साँस को पूरी तरह भीतर खींचने की क्रिया।)

334. रेचकः रेच्यते वायुः येन सः। (प्राणायाम में साँस को पूरी तरह बाहर निकालने की क्रिया।)

335. जालंधरबंधः जालं धरति इति जालन्धरः। (कंठ को सिकोड़कर ठुड्डी को छाती से लगाने वाला योग का एक बंध।)

336. उड्डियानबंधः उड्डीयते प्राणः येन। (पेट को भीतर की ओर खींचकर प्राण को ऊपर उठाने वाला बंध।)

337. त्राटकः एकटकं दर्शनम् इति त्राटकम्। (किसी बिंदु या मोमबत्ती की लौ पर बिना पलक झपकाए लगातार देखना।)

338. नेतिः नासिकायाः शुद्धिः इति नेतिः। (धागे या जल से नाक की नली को साफ़ करने की योग क्रिया।)

339. धोतीः धोयते आमाशयः अनया। (कपड़े की पट्टी से पेट और आमाशय को साफ़ करने की क्रिया।)

340. बस्तीः जलकर्मणा मलाशयशुद्धिः। (जल के माध्यम से बड़ी आंत को साफ़ करने की योग क्रिया।)

341. कपालभातिः कपालस्य भातिः (चमक)। (साँस को तेजी से बाहर फेंककर माथे और फेफड़ों को शुद्ध करना।)

342. नौलीः उदरमांसपेशीनां चालनम्। (पेट की मांसपेशियों को गोल-गोल घुमाने की कठिन योग क्रिया।)

343. मुद्राः मोदं ददाति इति मुद्रा। (शरीर और उंगलियों की वे विशेष स्थितियां जो सूक्ष्म ऊर्जा को जगाती हैं।)

344. सबीजसमाधिः बीजेन (ध्येयेन) सह समाधिः। (किसी रूप या विचार के सहारे लगाई गई समाधि।)

345. निर्बीजसमाधिः बीजरहिता समाधिः। (जहाँ सब विचार और संस्कार भस्म हो जाते हैं, मोक्ष की समाधि।)

346. सम्प्रज्ञातसमाधिः विचार-वितर्कादि सहित समाधिः। (समाधि का वह स्तर जहाँ ध्येय वस्तु का स्पष्ट ज्ञान बना रहता है।)

347. असम्प्रज्ञातसमाधिः सर्ववृत्तिनिरोधे सति समाधिः। (जहाँ ध्याता और ध्येय का भेद पूरी तरह मिट जाता है।)

348. क्रियायोगः तप-स्वाध्याय-प्रणिधानानि क्रियायोगः। (तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान का सम्मिलित रूप।)

349. चित्तविक्षेपः चित्तस्य विक्षेपः (भटकावः)। (साधना के मार्ग में मन को भटकाने वाली बाधाएँ या रोग।)

350. वशीकारसंज्ञाः इन्द्रियाणां पूर्णवशित्वम्। (संसार के सुंदर दृश्यों को देखकर भी मन में तनिक भी हलचल न होना।)

351. व्यतिरेकसंज्ञाः इन्द्रियाणां परीक्षणम्। (यह जांचना कि कौन सी इन्द्रिय वश में हुई और कौन सी अभी बाकी है।)

352. एकेन्द्रियसंज्ञाः केवलं मनसि रागस्य स्थितिः। (बाहरी इन्द्रियों का शांत होना, पर मन में सूक्ष्म इच्छा का बचे रहना।)

353. यजमानसंज्ञाः साधनायाः आरम्भकालः। (साधना की शुरुआत में इन्द्रियों को रोकने का पहला प्रयास।)

354. धर्ममेघसमाधिः धर्मस्य मेघः इव समाधिः। (समाधि की वह परम उच्च अवस्था जहाँ पुण्य और ज्ञान की वर्षा होती है।)

355. विभूतिः विशेषेण भूतिः (सिद्धिः)। (योग साधना के मार्ग में मिलने वाली अलौकिक शक्तियां।)

356. अणिमाः अणुत्वं प्राप्नोति इति अणिमा। (शरीर को एक परमाणु जितना छोटा कर लेने की सिद्धि।)

357. महिमाः महत्तां प्राप्नोति इति महिमा। (शरीर को ब्रह्मांड जितना विशाल कर लेने की अलौकिक शक्ति।)

358. लघिमाः लघुत्वं प्राप्नोति इति लघिमा। (शरीर को रुई से भी हल्का करके हवा में उड़ने की शक्ति।)

359. प्राप्तिः इष्टवस्तूनां प्राप्तिः। (कहीं भी बैठे-बैठे दूर की वस्तुओं को छू लेने या मँगा लेने की सिद्धि।)

360. प्राकाम्यः इच्छायाः अनवरोधः। (अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी लोक में चले जाने या रूप बदलने की शक्ति।)

361. वशित्वः सर्वं वशीकरोति इति वशित्वम्। (संसार के सभी जीवों और तत्वों को अपने वश में कर लेने की शक्ति।)

362. ईशित्वः प्रभुत्वं प्राप्नोति इति ईशित्वम्। (प्रकृति के तत्वों पर पूरी तरह शासन करने की सिद्धि।)

363. कामावसायिताः सङ्कल्पानां पूर्णसत्यता। (जो संकल्प मन में आए, उसे तुरंत सच कर दिखाने की सर्वोच्च सिद्धि।)

364. मनोजवित्वः मनसः इव गतिः। (शरीर को मन की रफ्तार से कहीं भी पहुँचा देने की शक्ति।)

365. कामरूपत्वः इच्छानुसारं रूपधारणम्। (अपनी मर्जी से कोई भी रूप या आकार बदल लेने की क्षमता।)

366. परकायप्रवेशः परकाये प्रवेशः। (अपनी आत्मा को दूसरे के मरे या जीवित शरीर में डाल देने का विज्ञान।)

367. दूरश्रवणः दूरात् श्रवणम् इति। (हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति की आवाज को स्पष्ट सुन लेने की योग-शक्ति।)

368. दूरदर्शनः दूरात् दर्शनम् इति। (बिना किसी यंत्र के बंद आँखों से त्रिलोक की कोई भी घटना साक्षात देखना।)

369. मौनः मनसः वाण्याः च शान्तिः। (वाणी को शांत करके मन को भीतर प्रभु में लीन करना।)

370. ध्यानयोगः ध्यानेन योगः इति ध्यानयोगः। (ध्यान के माध्यम से आत्मा और परमात्मा का मिलन कराना।)

371. हठयोगः हकार (सूर्य) ठकार (चन्द्र) योगः। (शरीर की नाड़ियों को शुद्ध करके बलपूर्वक मन को एकाग्र करना।)

372. राजयोग: योगानां राजा इति राजयोगः। (पतंजलि का अष्टांग योग जो सीधे मन और बुद्धि पर काम करता है।)

373. लययोग: चित्तस्य मूलतत्त्वे लयः। (नाद या प्रकाश में मन को पूरी तरह विलीन कर देने की साधना।)

374. मन्त्रयोग: मन्त्राणां जपेन योगः। (विशिष्ट मंत्रों के बार-बार जप से उच्च चेतना को जगाना।)

375. धारणाशक्ति: धारयितुं शक्तिः। (किसी भी ऊंचे विचार या ऊर्जा को भीतर टिकाए रखने की मानसिक सामर्थ्य।)

376. इडानाड़ी: वामभागस्था नाड़ी (चन्द्रनाड़ी)। (रीढ़ के बाईं तरफ स्थित सूक्ष्म नाड़ी जो मन को शीतलता देती है।)

377. पिंगलानाड़ी: दक्षिणभागस्था नाड़ी (सूर्यनाड़ी)। (रीढ़ के दाईं तरफ स्थित सूक्ष्म नाड़ी जो शरीर में अग्नि जगाती है।)

378. ब्रह्मनाड़ी: सुषुम्नायाः अन्तः स्थिता नाड़ी। (सुषुम्ना के भीतर की वह सबसे सूक्ष्म नली जिससे होकर प्राण ब्रह्मरंध्र में जाता है।)

379. ब्रह्मरंध्र: मस्तकस्य ऊपरी भागः। (सिर का वह शीर्ष स्थान जहाँ से जीवनमुक्त योगी प्राण छोड़ते हैं।)

380. चिदाभासध्यान: चिदाभासस्य ध्यानम्। (बुद्धि में चमकने वाले आत्म-प्रकाश पर ध्यान लगाना।)

381. साधनावस्था: साधनायाः अवस्था। (सिद्ध होने से पहले कड़े नियमों और तपस्या के दौर से गुजरने की स्थिति।)

382. सिद्धावस्था: सिद्धस्य अवस्था। (साधना पूरी होने पर परमानंद और शांति में टिक जाने की परम स्थिति।)

383. अजपाजाप: प्रयत्नरहितः जपः। (बिना माला के साँसों के साथ लगातार चलने वाला आंतरिक नाम-स्मरण।)

384. चित्तस्थैर्य: चित्तस्य स्थैर्यम् (निश्चलता)। (मन का पूरी तरह भटकना बंद हो जाना।)

385. बिन्दुसाधना: बिन्दोः संयमः। (शरीर की मूल ऊर्जा या वीर्य को ऊर्ध्वमुखी करने का गुप्त योग विज्ञान।)

386. ऊर्ध्वरेता: रेतः ऊर्ध्वं नयति इति। (वह योगी जो अपनी काम-ऊर्जा को ओज और प्रज्ञा में बदल लेता है।)

387. प्राणजय: प्राणस्य जयः (वशित्वम्)। (साँस की गति पर पूरी तरह नियंत्रण पा लेना।)

388. अमनस्कयोग: मनसः विना योगः। (मन की सब वृत्तियों को समाप्त करके आत्मा में ठहरने की स्थिति।)

389. शाम्भवीमुद्रा: शिवस्य प्रियमुद्रा। (आँखें खुली रखकर भी दृष्टि को दोनों भौहों के बीच स्थिर करने की दिव्य मुद्रा।)

390. अमृतस्राव: अमृतस्य स्रवणम्। (खेचरी मुद्रा के सिद्ध होने पर तालु से टपकने वाला दिव्य सात्विक रस।)

391. नादश्रुति: आन्तरिकनादस्य श्रवणम्। (ध्यान गहरा होने पर भीतर गूँजने वाले शंख या वीणा की आवाज सुनना।)

392. निर्मलचित्त: निर्मलं चित्तं यस्य। (जिसके मन से काम-क्रोध का कीचड़ पूरी तरह साफ़ हो चुका है।)

393. अखण्डध्यान: अविच्छिन्नं ध्यानम्। (तेल की धार की तरह चौबीसों घंटे चलने वाला प्रभु का चिंतन।)

394. अन्तःकरणशुद्धि: अन्तःकरणस्य सम्यक् शुद्धिः। (साधना के द्वारा मन-बुद्धि को पूरी तरह शीशे जैसा साफ़ करना।)

395. प्रणिधान: पूर्णसमर्पणम् इति। (अपनी अहंता को पूरी तरह इष्ट के चरणों में बहा देना।)

396. साधनचतुष्टय: साधनायाः चत्वारि साधनानि। (विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व का सम्मिलित रूप।)

397. षट्सम्पत्ति: शम-दमादि षट् गुणाः। (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान रूपी छह धन।)

398. समाधान: चित्तस्य एकाग्रता। (बुद्धि को इधर-उधर भटकाए बिना केवल सत्य में टिकाए रखना।)

399. ऋतप्रज्ञा: ऋतंभरा सा प्रज्ञा। (भ्रम से सर्वथा मुक्त केवल सत्य को जानने वाली बुद्धि।)

400. कैवल्यसाधना: कैवल्यस्य प्राप्तये साधना। (संसार से पूरी तरह मुक्त होकर शुद्ध आत्मा में लीन होने की परम क्रिया।)

भाग 5: भक्ति रस, शरणागति और उपासना (401-500)

401. सत्संगः सतः संगः इति सत्संगः। (परम सत्य या सत्य को जानने वाले महापुरुषों का संग करना।)

402. भक्तिः भज्यते सेव्यते ईश्वरः अनया इति भक्तिः। (ईश्वर के प्रति परम प्रेम और उनकी सेवा करना।)

403. कीर्तनः कीर्त्यते भगवद्गुणाः अनेन इति कीर्तनम्। (ऊंचे स्वर में भगवान के नाम, लीला और गुणों का गान करना।)

404. प्रपत्तिः पूर्णरूपेण शरणं गमनम्। (बिना किसी शर्त के, अपनी पूरी अहंता को ईश्वर को सौंप देना।)

405. आत्मनिवेदनम्: आत्मनः समर्पणम् इति आत्मनिवेदनम्। (भक्त का अपने शरीर, मन और प्राण को पूरी तरह भगवान का मान लेना।)

406. अर्चनाः अर्च्यते पूज्यते हरिः अनया इति अर्चना। (विधि-विधान से भगवान की मूर्तरूप में सेवा-पूजा करना।)

407. पादसेवनम्: पादयोः सेवनं इति पादसेवनम्। (भगवान के चरणों की या जीवों की नारायण भाव से सेवा करना।)

408. दास्यः दासस्य भावः दास्यम्। (स्वयं को सेवक और भगवान को स्वामी मानकर प्रेम करना।)

409. सख्यः सख्युः भावः सख्यम्। (भगवान को अपना सबसे प्रिय मित्र मानकर उनसे जुड़ना।)

410. वात््ِسلयः वत्साय हितं वात्सल्यम्। (भगवान को छोटे बालक के रूप में देखकर माता-पिता जैसा प्रेम करना।)

411. माधुर्यः मधुरस्य भावः माधुर्यम्। (ईश्वर के प्रति प्रेमी-प्रेमिका जैसा परम और रसमय अनुराग।)

412. शरणागतवत्सलः शरणागतेषु वत्सलः इति शरणागतवत्सलः। (अपनी शरण में आए हुए भक्तों पर माता की तरह प्रेम लुटाने वाले।)

413. भावग्राहीः भावं गृह्णाति इति भावग्राही। (जो बाहरी सामग्रियों को नहीं, बल्कि हृदय के सच्चे भाव को ग्रहण करते हैं।)

414. परमहंसः परमो यः हंसः। (संन्यासियों की सर्वोच्च अवस्था, जो संसार में केवल ब्रह्म को ग्रहण करते हैं।)

415. भगवद्कैंकर्यः भगवतः किङ्करस्य कर्म इति कैङ्कर्यम्। (हर कार्य को भगवान की दिव्य सेवा मानकर अर्पित करना।)

416. दिव्यनेत्रः दिव्यं च तत् नेत्रं इति दिव्यनेत्रम्। (अलौकिक दृष्टि, जिससे ईश्वर के विराट रूप के दर्शन होते हैं।)

417. नामापराधः नाम्नि कृतः अपराधः इति नामापराधः। (नाम का जप करते समय की जाने वाली 10 शास्त्र-विरुद्ध भूलें।)

418. पुलकावलीः पुलकानां आवलिः। (भक्ति के अतिरेक से शरीर के रोम-रोम का खड़े हो जाना।)

419. श्रवणः शृणोति इति श्रवणम्। (भगवान की कथाओं, लीलाओं और महिमा को अत्यंत प्रेम से सुनना।)

420. स्मरणः स्मरति इति स्मरणम्। (हर समय, उठते-बैठते अपने इष्टदेव के नाम और रूप को याद रखना।)

421. वंदनः वन्दते इति वन्दनम्। (भगवान के चरणों या उनकी मूर्ति के आगे पूरी श्रद्धा से सिर झुकाना।)

422. अनन्यभक्तिः न अन्या भक्तिः इति। (ईश्वर को छोड़कर संसार के किसी मनुष्य या देवी-देवता के आगे मन न झुकाना।)

423. एकांतिकभक्तिः एकान्ततः सा भक्तिः। (संसार के दिखावे से दूर, अकेले में बैठकर की जाने वाली गुप्त प्रीति।)

424. अहैतुकीभक्तिः हेतु (स्वार्थ) रहिता भक्तिः। (बिना किसी स्वर्ग, धन या मोक्ष के लालच के की जाने वाली निश्छल भक्ति।)

425. रागानुगाभक्तिः रागं अनुगच्छति सा। (शास्त्रों के कड़े नियमों से ऊपर उठकर भगवान के प्रति होने वाला स्वाभाविक प्रेम।)

426. वैधीभक्तिः विधिमनुसृत्य सा भक्तिः। (शास्त्रों के नियमों, पूजा और कर्मकांड के अनुसार की जाने वाली शुरुआती भक्ति।)

427. प्रेमाभक्ति: प्रेम्णा पूर्णा सा भक्तिः। (भक्ति की वह सर्वोच्च अवस्था जहाँ भक्त भगवान के प्रेम में मतवाला हो जाता है।)

428. भावभक्ति: भावप्रचुरा सा भक्तिः। (जहाँ पूजा के बाहरी आडंबर छूट जाते हैं और केवल हृदय के आँसू ही पूजा बनते हैं।)

429. पराभक्ति: परमा च सा भक्तिः। (वेदांत के अनुसार ज्ञान और भक्ति की एकता, सर्वोच्च आत्म-प्रेम।)

430. साधनभक्ति: साधनात्मिका सा भक्तिः। (भगवान को पाने के लिए नियमों के अनुसार किया जाने वाला अभ्यास।)

431. अश्रुपात: अश्रूणां पातः (पतनम्)। (प्रभु के विरह या आनंद में आँखों से बहने वाले पवित्र आँसू।)

432. गद्गदवाणी: गद्गदा सा वाणी। (भगवान के प्रेम में कंठ का रुंध जाना, जिससे शब्द साफ़ नहीं निकलते।)

433. तन्मयता: तस्मिन् मयता (एकात्मता)। (प्रभु के ध्यान या कीर्तन में ऐसा डूबना कि अपना होश ही न रहे।)

434. भगवत्प्रेम: भगवते प्रेम इति। (इस नश्वर संसार को छोड़कर केवल अविनाशी परमात्मा से सच्चा स्नेह होना।)

435. दीनता: दीनस्य भावः दीनता। (भगवान के आगे स्वयं को अत्यंत छोटा, अकिंचन और सेवक मानना।)

436. विप्रलम्भ: विरहस्य भावः विप्रलम्भः। (अपने भगवान से दूर होने पर हृदय में उठने वाली तड़प या विरह की आग।)

437. संभोगश्रृंगार: मिलनस्य परमानन्दः। (भक्ति शास्त्र में जीवात्मा का परमात्मा से मिलन का परम सुख।)

438. अनन्यशरण: न अन्यः शरणः यस्य सः। (जो संसार के सब सहारे छोड़कर केवल प्रभु की ओट में आ गया है।)

439. शरणागति: शरणं गमनम् इति शरणागतिः। (अपने जीवन की नैया पूरी तरह भगवान के हाथों में सौंप देना।)

440. इष्टदेव: इष्टः च असौ देवः। (भगवान के अनेक रूपों में से वह रूप जो हमारे हृदय को सबसे प्यारा लगता है।)

441. उपासना: उप (समीप) आसनं (बैठना)। (अपने मन को सांसारिक विचारों से हटाकर इष्टदेव के समीप टिकाना।)

442. मानसीपूजा: मनसा कृता पूजा। (बिना किसी फूल या जल के केवल मन की कल्पना से भगवान का सुंदर श्रृंगार और भोग लगाना।)

443. पंचोपचार: पञ्च उपचाराः। (पूजा के 5 मुख्य अंग: गंध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य।)

444. षोडशोपचार: षोडश उपचाराः। (शास्त्रों के अनुसार भगवान के स्वागत की 16 विधियाँ जैसे आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि।)

445. आरती: आरात्रिकं नीराजनम्। (दीपक की लौ घुमाकर भगवान के विग्रह की नजर उतारना और वंदना करना।)

446. प्रसाद: प्रसीदति अनेन इति प्रसादः। (भगवान को भोग लगाने के बाद पवित्र हुआ भोजन जो मन को प्रसन्न करता है।)

447. चरणामृत: चरणयोः अमृतम्। (भगवान के विग्रह को स्नान कराने के बाद पवित्र हुआ जल जिसे पीने से पाप नष्ट होते हैं।)

448. महाप्रसाद: महान् च असौ प्रसादः। (जगन्नाथ पुरी या बड़े तीर्थों का वह प्रसाद जिसे साक्षात नारायण का रूप माना जाता है।)

449. भगवद्गीता: भगवता गीता (गायी)। (महाभारत के युद्ध में साक्षात श्री कृष्ण के मुख से निकला दिव्य उपदेश।)

450. भागवत: भगवतः इदम् इति भागवतम्। (भगवान और उनके परम भक्तों के चरित्र को बताने वाला पावन महापुराण।)

451. भक्तमाल: भक्तानां माला। (नाभादास जी का वह ग्रंथ जिसमें सैकड़ों परम संतों के पावन चरित्र गाए गए हैं।)

452. कीर्तनकार: कीर्तनं करोति इति। (जो ढोल-मंजीरे के साथ घूम-घूमकर हरि नाम का प्रचार और गान करता है।)

453. कथावाचक: कथां वक्ति इति कथावाचकः। (जो व्यासपीठ पर बैठकर अत्यंत प्रेम से भगवान की लीलाएं सुनाता है।)

454. सच्चा वैष्णव: विष्णोः भक्तः वैष्णवः। (वह जो सबमें विष्णु को देखता है और जिसके हृदय में दूसरों के लिए केवल दया है।)

455. नामजप: नाम्नः जपः इति नामजपः। (जीभ या मन से लगातार राम, कृष्ण या हरि नाम का उच्चारण करना।)

456. नामसंकीर्तन: नाम्नां सम्यक् कीर्तनम्। (सामूहिक रूप से ताली बजाकर भगवान के नामों का ऊंचे स्वर में गान।)

457. अखण्डकीर्तन: अविच्छिन्नं कीर्तनम्। (जो बिना रुके कई दिनों या चौबीसों घंटे लगातार चलता रहता है।)

458. भावविभोर: भावेन विशेषेण भूरि (मग्न)। (भगवान के प्रेम या कथा में पूरी तरह डूब जाना।)

459. हरिकथा: हरेः कथा इति हरिकथा। (परमात्मा की वे पावन कथाएं जो सुनने वाले के दुखों और पापों को हर लेती हैं।)

460. सत्संगति: सतां सङ्गतिः इति। (संसार के मोह को काटने वाली संतों की परम पवित्र संगति।)

461. परमभक्त: परमः च असौ भक्तः। (वह साधक जो भगवान के अलावा मोक्ष को भी लात मार देता है।)

462. सखाभाव: सख्युः भावः इति। (ईश्वर को अपना लंगोटिया यार या मित्र मानकर की जाने वाली अनमोल भक्ति।)

463. माधुर्यभाव: मधुरः भावः इति। (स्वयं को गोपी या दासी मानकर श्री कृष्ण से परम प्रेम करने का भाव।)

464. वात्सल्यभाव: वत्सलस्य भावः। (भगवान को नन्हा लल्ला मानकर उसे दूध पिलाने या सुलाने का अलौकिक भाव।)

465. शान्तभाव: शान्तः भावः इति। (भीष्म पितामह की तरह भगवान को परम शांत और ऐश्वर्यशाली रूप में देखना।)

466. नवधाभक्ति: नव प्रकारा भक्तिः। (भागवत के अनुसार भक्ति के 9 अंग: श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन।)

467. प्रेमदीवानी: प्रेम्णा दीवानी इति। (मीराबाई की तरह सांसारिक लोक-लज्जा छोड़कर प्रभु के प्रेम में पागल हो जाना।)

468. भगवदाश्रय: भगवतः आश्रयः इति। (संसार के झूठे नेताओं और धन का आसरा छोड़कर केवल प्रभु के भरोसे बैठना।)

469. अनन्यचित्त: न अन्यत्र चित्तं यस्य। (जिसका मन सुई की नोक की तरह केवल अपने ठाकुर जी में अटका रहता है।)

470. हरिचरण: हरेः चरणौ इति। (भगवान श्री हरि के वे पावन चरण कमल जो भवसागर से तारने वाले हैं।)

471. भक्तिमहारानी: भक्तिः एव महारानी। (साधना के साम्राज्य में भक्ति को सर्वोच्च रानी माना गया है क्योंकि इसके पीछे भगवान खुद भागते हैं।)

472. साधुसेवा: साधूनां सेवा इति। (धरती पर संतों और महात्माओं की नारायण भाव से सेवा-सुश्रूषा करना।)

473. भक्तहृदय: भक्तानां हृदयम्। (वह कोमल स्थान जहाँ साक्षात श्री हरि सदैव निवास करते हैं।)

474. करुणामय: कृपया प्रचुरः इति। (भगवान का वह रूप जो जीवों के थोड़े से रोने पर भी पिघल जाता है।)

475. कृपाप्रसाद: कृपायाः प्रसादः (फलम्)। (साधना से नहीं, बल्कि केवल प्रभु की मर्जी और दया से मिलने वाला आत्मज्ञान।)

476. भक्तशिरोमणि: भक्तेषु शिरोमणिः (सर्वोच्चः)। (भक्तों की कतार में सबसे आगे खड़े महापुरुष जैसे श्री हनुमान जी।)

477. लीलाचिन्तन: लीलायाः चिन्तनम्। (श्री कृष्ण या श्री राम के द्वारा की गई पावन क्रीड़ाओं का मन में ध्यान करना।)

478. भगवद्विग्रह: भगवतः विग्रहः (मूर्तिः)। (धातु या पत्थर की वह मूर्ति जिसे भक्त अपने प्रेम से साक्षात जाग्रत भगवान बना लेता है।)

479. नाममहिमा: नाम्नः महिमा इति। (कलयुग में केवल प्रभु के नाम मात्र से ही भवसागर पार होने का दिव्य सिद्धांत।)

480. तुलसीसेवा: तुलस्याः सेवा इति। (ठाकुर जी की सबसे प्रिय वैष्णवी देवी तुलसी का सिंचन और पूजन करना।)

481. भगवद्धाम: भगवतः धाम (लोकः)। (गोलोक या साकेत लोक जहाँ जन्म-मरण का चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाता है।)

482. चिन्मयविग्रह: चिन्मयः विग्रहः। (भगवान का वह शरीर जो हाड़-मांस का नहीं, बल्कि शुद्ध चेतना और आनंद का बना है।)

483. राधाभाव: राधायाः भावः इति। (भक्ति की वह सर्वोच्च पराकाष्ठा जहाँ भक्त और भगवान का भेद पूरी तरह मिट जाता है।)

484. भगवदानंद: भगवतः आनंदः। (संसार के तुच्छ भोगों से ऊपर उठकर प्रभु की संगति में मिलने वाला परमानंद।)

485. अन्तःआरती: आन्तरिक नीराजनम्। (मन के दीये में ध्यान का घी डालकर भीतर ही परमात्मा की आरती उतारना।)

486. अहैतुकीकृपा: कारणरहिता कृपा। (साधक की योग्यता न होने पर भी भगवान द्वारा उस पर की गई असीम दया।)

487. भक्तिमार्ग: भक्तिः एव मार्गः। (ज्ञान की कठिन पगडंडियों से दूर, प्रभु के प्रेम का सीधा और सुगम रास्ता।)

488. प्रभुचरण: प्रभोः चरणौ इति। (संसार के सभी तीर्थों का मूल केंद्र, भगवान के चरण।)

489. सच्चासेवक: यथार्थः सेवकः। (जो अपनी बड़ाई की इच्छा न करके केवल अपने मालिक की प्रसन्नता के लिए काम करता है।)

490. विशुद्धप्रेम: मल-रहितं प्रेम। (जहाँ लेने की कोई चाह नहीं होती, केवल अपने प्रभु पर सर्वस्व लुटाने का भाव होता है।)

491. गोपीभाव: गोपीनां भावः इति। (संसार के पति, पुत्र और लोक-लाज को भूलकर कृष्ण को ही अपना सब कुछ मान लेने का पावन भाव।)

492. कीर्तनमण्डली: कीर्तनस्य मण्डली। (हरि नाम प्रेमियों का वह समूह जो एक साथ बैठकर प्रभु के गुण गाता है।)

493. भगवदुन्मुख: भगवतः उन्मुखः (सामने)। (संसार की तरफ से पीठ फेरकर भगवान की तरफ मुड़ जाना।)

494. भावसमाधि: भावेन समाधिः इति। (कीर्तन या कथा सुनते-सुनते अत्यधिक प्रेम के कारण अचेत और समाधिस्थ हो जाना।)

495. नामजपमाला: जपस्य माला इति। (१०८ मनकों की वह पवित्र माला जिसके माध्यम से नाम की गिनती और एकाग्रता सधती है।)

496. ठाकुरसेवा: ठाकुरस्य सेवा इति। (अपने घर के मंदिर में बाल गोपाल या शालिग्राम जी को लाड़ लड़ाना और भोग लगाना।)

497. दिव्यलीला: दिव्या च सा लीला। (भगवान के वे अलौकिक कार्य जो देखने में इंसानी लगते हैं, पर छिपे रूप में ब्रह्मांड का उद्धार करते हैं।)

498. भक्तिरस: भक्तिः एव रसः। (संसार के नीरस कुएँ से दूर, प्रभु के प्रेम का वह रस जिसे पीने के बाद कभी प्यास नहीं लगती।)

499. शरणागतपालक: शरणागतानां पालकः। (अपनी शरण में आए दुष्ट से दुष्ट जीव को भी गले लगाने वाले परमात्मा।)

500. अनन्यआश्रय: न अन्यः आश्रयः यस्य। (जिसका भरोसा संसार की तिजोरी या लाठी पर नहीं, केवल ईश्वर के नाम पर है।)

भाग 6: वेदांत, दर्शन और आत्मज्ञान (501-600)

501. अद्वैत: न द्वैतम् इति अद्वैतम्। (जहाँ जीव और ब्रह्म में कोई अंतर न रहे; केवल एक ही तत्त्व।)

502. माया: या मा सा माया। (जो वास्तव में नहीं है, फिर भी दिखाई देती है और सत्य को छिपाती है।)

503. मुक्ति / मोक्ष: मुच्यते सर्वबंधनेभ्यः इति मुक्तिः। (जो जीव को अज्ञान के सभी बंधनों से मुक्त कर दे।)

504. सविकल्प: विकल्पेन सहितः सविकल्पः। (समाधि की वह अवस्था जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय का सूक्ष्म भेद बना रहता है।)

505. निर्विकल्प: विकल्प-रहितः इति निर्विकल्पः। (समाधि की वह परम अवस्था जहाँ सब प्रकार के भेद मिट जाते हैं।)

506. अध्यारोप: वस्तुन्यवस्त्वारोपः। (जैसे रस्सी में सांप समझ लिया जाता है, वैसे ही ब्रह्म पर संसार का आरोप करना।)

507. अपवाद: आरोपिताभासस्य निराकरणम् इति अपवादः। (विचार द्वारा यह जान लेना कि संसार मिथ्या है और केवल ब्रह्म सत्य है।)

508. विवर्त: अतत्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्तः। (मूल रूप बदले बिना किसी वस्तु का कुछ और दिखाई देना; जैसे सोने का हार।)

509. महावाक्य: महत् च तत् वाक्यं इति महावाक्यम्। (उपनिषदों के वे वाक्य जो जीव और ब्रह्म की एकता को सिद्ध करते हैं।)

510. जीवन्मुक्त: जीवन्नेव मुक्तः इति जीवन्मुक्तः। (वह महापुरुष जो जीवित रहते हुए ही बंधनों से मुक्त है।)

511. प्रस्थानत्रयी: त्रयाणां समूहः। (वेदांत के तीन मुख्य आधार ग्रंथ: उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता।)

512. सोऽहम्: सः अहम् इति सोऽहम्। ("वह परमात्मा ही मैं हूँ" का आंतरिक बोध।)

513. त्रिकालदर्शी: त्रयाणां कालानां द्रष्टा। (वह सिद्ध पुरुष जो भूत, भविष्य और वर्तमान को देख सकता है।)

514. उपाधि: उप-आ-दधाति इति उपाधिः। (वह बाहरी आवरण जो शुद्ध वस्तु के रूप को छिपा दे; जैसे शरीर और मन।)

515. दृक्-दृश्य: दृक् च दृश्यं च। (देखने वाले और दिखाई देने वाले के भेद को समझना।)

516. अखंडाकार: न खण्डितः आकारः यस्याः सा। (समाधि काल में जब बुद्धि केवल ब्रह्म के आकार में ढल जाती है।)

517. स्वात्मानंद: स्वस्य आत्मनः आनंदः इति स्वात्मानंदः। (स्वयं की आत्मा में ही स्थित रहने से मिलने वाला परमानंद।)

518. ब्रह्मविद्या: ब्रह्मणः विद्या। (वह सर्वोच्च ज्ञान जिसे पा लेने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।)

519. कैवल्यपदम्: कैवल्यस्य पदम्। (योग और वेदांत की वह अंतिम मंज़िल जहाँ जीवात्मा ब्रह्म में विलीन हो जाती है।)

520. नेति-नेति: न इति न इति। (उपनिषदों का वह सिद्धांत जो "यह भी ब्रह्म नहीं है, वह भी नहीं है" कहकर अंत में शुद्ध आत्मा तक पहुँचाता है।)

521. तत्वमसि: तत् त्वं असि। (सामवेद का महावाक्य जिसका अर्थ है—"वह ब्रह्म तुम ही हो।")

522. अहं ब्रह्मास्मि: अहम् ब्रह्म अस्मि। (यजुर्वेद का महावाक्य जिसका अर्थ है—"मैं ही ब्रह्म हूँ।")

523. अयमात्मा ब्रह्म: अयम् आत्मा ब्रह्म। (अथर्ववेद का महावाक्य जिसका अर्थ है—"यह आत्मा ही ब्रह्म है।")

524. प्रज्ञानं ब्रह्म: प्रज्ञानं ब्रह्म। (ऋग्वेद का महावाक्य जिसका अर्थ है—"वह सर्वोच्च होश या प्रज्ञान ही ब्रह्म है।")

525. मायावी: माया अस्ति यस्य सः। (इस संसार रूपी जादू के खेल को दिखाने वाला परम जादूगर, ईश्वर।)

526. आवरणशक्तिः आवृतं करोति इति आवरणशक्तिः। (माया की वह शक्ति जो सत्य के ऊपर अज्ञान का परदा डाल देती है।)

527. विक्षेपशक्तिः विक्षिप्यते अनया इति विक्षेपशक्तिः। (माया की वह दूसरी शक्ति जो रस्सी में सांप या ब्रह्म में झूठे संसार को खड़ा कर देती है।)

528. तटस्थलक्षणाः तटस्थं लक्षणम्। (ब्रह्म का वह बाहरी लक्षण जिससे हम उसे सृष्टि का कर्ता समझते हैं, जैसे घर पर बैठे कौवे से घर की पहचान।)

529. स्वरूपलक्षणाः स्वरूपस्य लक्षणम्। (ब्रह्म का असली और आंतरिक लक्षण—सच्चिदानंद होना।)

530. सांख्यदर्शनः संख्यां (तत्वानि) कथयति इति सांख्यम्। (कपिल मुनि का वह दर्शन जो प्रकृति और पुरुष के २५ तत्वों का विवेचन करता है।)

531. योगदर्शनः योगं प्रकथयति इति योगदर्शनम्। (पतंजलि मुनि का दर्शन जो चित्त को स्थिर करने का मार्ग दिखाता है।)

532. न्यायदर्शनः नीयते अनेन इति न्यायदर्शनम्। (गोतम मुनि का वह दर्शन जो तर्क और प्रमाणों के आधार पर सत्य की परीक्षा करता है।)

533. वैशेषिकदर्शनः विशेषं प्रकथयति इति वैशेषिकम्। (कणाद मुनि का दर्शन जो परमाणु विज्ञान और सृष्टि के विशेष तत्वों को समझाता है।)

534. पूर्वमीमांसाः पूर्वं विचारः इति पूर्वमीमांसा। (जैमिनी मुनि का दर्शन जो वेदों के कर्मकांड और यज्ञों के मर्म को खोलता है।)

535. उत्तरमीमांसाः उत्तरः विचारः (वेदान्तः)। (बादरायण व्यास का दर्शन जिसे वेदांत कहते हैं, जो शुद्ध आत्मज्ञान की चर्चा करता है।)

536. षड्दर्शनः च्याणां दर्शनानां समूहः। (सनातन संस्कृति के उपर्युक्त छह आस्तिक दर्शन।)

537. सत्ख्यातिः सतः ख्यातिः (भ्रमः)। (वह दार्शनिक सिद्धांत जो भ्रम के समय भी किसी वास्तविक वस्तु की सत्ता मानता है।)

538. असतख्यातिः असतः ख्यातिः। (शून्यवादी बौद्धों का सिद्धांत कि जो दिखाई दे रहा है वह सर्वथा असत्य (शून्य) है।)

539. ािनिर्वचनीयख्यातिः निर्वक्तुं न शक्यते इति। (शंकराचार्य का वेदांत सिद्धांत कि यह संसार न तो पूरी तरह सच है और न झूठ, यह अनिवर्चनीय है।)

540. जगतमिथ्याः जगत् मिथ्या (परिवर्तनशीलम्)। (वेदांत का परम सत्य कि यह दृश्य संसार सपना है, सदा टिकने वाला नहीं है।)

541. ब्रह्मसत्यम्ः ब्रह्म एव सत्यम्। (केवल वह अचल और अविनाशी परमेश्वर ही एकमात्र वास्तविक सत्य है।)

542. परिणामवादः परिणामस्य वादः। (वह सिद्धांत जिसके अनुसार कारण बदलकर कार्य बन जाता है, जैसे दूध बदलकर दही बनता है।)

543. विवर्तवादः विवर्तस्य वादः। (वेदांत का सिद्धांत कि ब्रह्म बिना बदले ही संसार के रूप में दिखाई दे रहा है, जैसे रस्सी बिना बदले सांप दिखती है।)

544. अजातवादः न जातः इति अजातवादः। (माण्डूक्य कारिका का सर्वोच्च सिद्धांत कि न तो कभी कोई सृष्टि बनी और न कोई जीव बंधा, सब कुछ सदा मुक्त ब्रह्म ही है।)

545. बिम्ब-प्रतिबिम्बवादः बिम्बस्य प्रतिबिम्बः। (यह सिद्धांत कि ईश्वर बिम्ब (असली रूप) है और हमारी जीवात्मा बुद्धि के आइने में उसका केवल परछाई या प्रतिबिम्ब है।)

546. अवच्छेदवादः अवच्छिन्नस्य भावः। (यह सिद्धांत कि जैसे घड़े के भीतर का आकाश अलग दिखता है पर मूल में वह महाकाश ही है, वैसे ही शरीर के कारण आत्मा अलग दिखती है।)

547. अविद्यानिवृत्तिः अविद्यायाः पूर्णनिवृत्तिः। (ज्ञान के सूर्य के उगते ही अज्ञान के अंधकार का हमेशा के लिए बिस्तर गोल हो जाना।)

548. विदेहमुक्तिः देहाभावे मुक्तिः। (मौत के बाद शरीर के पिंजरे को तोड़कर हमेशा के लिए परमात्मा के अनंत सागर में विलीन हो जाना।)

549. परमार्थसत्यः परमार्थतः सत्यम्। (वह सर्वोच्च सत्य जो समाधि में अनुभव होता है, जहाँ कोई संसार नहीं रहता।)

550. व्यावहारिकसत्यः व्यवहारे सत्यम्। (इस दुनिया का वह सत्य जो रोजमर्रा के कामकाज में सच लगता है, जैसे भूख लगने पर रोटी खाना।)

551. प्रातिभासिकसत्यः प्रतिभासमात्रे सत्यम्। (केवल भ्रम या सपने के समय सच लगने वाली चीज़, जैसे मरुस्थल में पानी दिखना।)

552. त्रिकालाबाधितः: त्रिषु कालेषु अबाधितः। (जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में कभी झूठा साबित न हो, वही असली सत्य है।)

553. प्रमाः यथार्थज्ञानं प्रमा। (किसी वस्तु का जैसा रूप है, उसका वैसा ही अचूक और सही ज्ञान होना।)

554. प्रमाताः यथार्थज्ञानस्य ज्ञाता। (वह सत्य को जानने वाला पुरुष या साक्षी।)

555. प्रमेयः यथार्थज्ञानस्य विषयः। (वह वस्तु या ब्रह्म जिसे जाना जा रहा है।)

556. प्रमाणः प्रमायाः साधनं प्रमाणम्। (सत्य तक पहुँचने का साधन या रास्ता; जैसे प्रत्यक्ष, अनुमान या शब्द।)

557. शब्दाप्रमाणः आप्तवचनं शब्दप्रमाणम्। (वेद, उपनिषद या आत्मज्ञानी महापुरुषों के मुख से निकले अचूक वचन।)

558. प्रत्यक्षाप्रमाणः इन्द्रियैः साक्षात् ज्ञानम्। (आँखों से देखकर या छूकर होने वाला सीधा ज्ञान।)

559. अनुमानाप्रमाणः लिङ्गेन लिङ्गिनो ज्ञानम्। (धुआँ देखकर पहाड़ पर आग होने का अंदाजा लगाना।)

560. चिदाभासत्वः चिदाभासस्य भावः। (बुद्धि के धरातल पर चेतना की परछाई का होना।)

561. अखंडाकरवृत्तिः अखंडा च सा वृत्तिः। (ब्रह्मज्ञान की वह अंतिम मानसिक लहर जो अज्ञान को खाकर खुद भी शांत हो जाती है।)

562. सजातीयभेदः समानेभ्यः भेदः। (एक ही जाति की दो चीजों के बीच का अंतर; जैसे एक आम के पेड़ का दूसरे आम के पेड़ से भेद।)

563. विजातीयभेदः भिन्नेभ्यः भेदः। (दो अलग-अलग जातियों के बीच का अंतर; जैसे आम के पेड़ का पत्थर से भेद।)

564. स्वगतभेदः अवयवेषु भेदः। (एक ही वस्तु के अपने अंगों के बीच का अंतर; जैसे पेड़ का उसकी पत्तियों या डालियों से भेद।)

565. सच्चिदानंदविग्रहः सच्चिदानन्दमयः विग्रहः। (ब्रह्म का वह स्वरूप जो किसी भौतिक तत्व से नहीं बना है।)

566. परात्परः परात् अपि परः। (जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान शक्तियों से परे सर्वोच्च है।)

567. अद्वैतसिद्धिः अद्वैतस्य सिद्धिः। (द्वैत के भ्रम को काटकर केवल एक ही अद्वैत तत्व में पूरी तरह प्रतिष्ठित हो जाना।)

568. सर्वमात्मैवाभूत्: सर्वं आत्मा एव अभूत। (वह परम अनुभूति जहाँ साधक को पेड़, पौधे, मनुष्य सब अपनी ही आत्मा के रूप दिखाई देते हैं।)

569. अखण्डबोधः अविच्छिन्नः बोधः। (ज्ञान की वह अखंड स्थिति जो सोने, जागने या सपना देखने में भी कभी गायब नहीं होती।)

570. विद्वन्मोदः विदुषां मोदः (आनन्दः)। (आत्मज्ञानियों को मिलने वाला वह परमानंद जो वाणी से बाहर नहीं कहा जा सकता।)

571. चित्तविश्रांतिः चित्तस्य सम्यक् विश्रान्तिः। (जन्मों-जन्मों की अंतहीन दौड़ के बाद मन का अपनी आत्मा के घर में चैन से सो जाना।)

572. अविद्यालेशः अविद्यायाः सूक्ष्मभागः। (आत्मज्ञान होने के बाद भी शरीर को जिंदा रखने के लिए बचा हुआ अज्ञान का बहुत मामूली हिस्सा।)

573. जीव-ब्रह्म-ऐक्यः जीवस्य ब्रह्मणः च ऐक्यम्। (यह परम सत्य कि बूंद (जीवात्मा) और समुद्र (परमात्मा) मूल में एक ही पानी हैं।)

574. अचलस्थितिः अचला सा स्थितिः। (आत्मज्ञान की वह स्थिति जहाँ से मनुष्य को ब्रह्मांड का कोई भी दुःख डिगा नहीं सकता।)

575. निर्विकल्पताः निर्विकल्पस्य भावः। (विचारों के जाल से सर्वथा मुक्त पूर्ण मौन की स्थिति।)

576. चिद्घनरूपः चेतनायाः ठोस रूपम्। (शुद्ध चेतना का अखंड स्वरूप।)

577. चिदाकाशरूपः चिदाकाशस्य स्वरूपम्। (अनंत ज्ञान आकाश का रूप।)

578. अद्वैतानंदः अद्वैतस्य आनंदः। (दो होने के झगड़े से मुक्त होकर केवल एक होने का असीम सुख।)

579. परमार्थज्ञः परमार्थं जानाति इति। (वह महापुरुष जो इस संसार के खेल के पीछे छिपे असली सत्य को जानता है।)

580. ब्रह्मविद्ः ब्रह्म जानाति इति ब्रह्मविद्। (ब्रह्म को जानने वाला ज्ञानी।)

581. ब्रह्मविद्वरः ब्रह्मविदाम श्रेष्ठः। (ज्ञानियों की वह ऊंची अवस्था जहाँ वे समाज के कल्याण के लिए खुद उपदेश देते हैं।)

582. ब्रह्मविद्वरीयानः उच्चतरः ब्रह्मविद्। (ज्ञानी की वह अवस्था जहाँ वे अपने आप उपदेश नहीं देते, माँगने पर ही बोलते हैं।)

583. ब्रह्मविद्वरिष्ठः सर्वोच्चः ब्रह्मविद्। (ज्ञान की आखिरी मंज़िल जहाँ महापुरुष पूरी तरह मौन और जड़वत हो जाते हैं, जिन्हें खाना भी दूसरा खिलाता है।)

584. आत्मारामः आत्मनि एव रमतते इति। (जो सुख के लिए किसी स्त्री, धन या वाइन की इच्छा नहीं करता, केवल अपनी आत्मा में मस्त रहता है।)

585. स्वराज्यपदः स्वस्य राज्यम्। (इन्द्रियों और मन पर पूरी विजय पाकर अपने आंतरिक साम्राज्य का राजा बन जाना।)

586. अज्ञानावरणः अज्ञानस्य आवरणम् (परदा)। (सत्य को ढकने वाला अविद्या का काला पर्दा।)

587. बन्धमोक्षविचारः बन्धस्य मोक्षस्य च विचारः। (यह समझना कि बंधन क्या है और उससे छूटने का रास्ता क्या है।)

588. दृश्यानुविद्धसमाधिः दृश्येन सहित समाधिः। (सविकल्प समाधि का एक भेद जहाँ बाहरी दृश्यों के रहते हुए भी ब्रह्म का चिंतन होता है।)

589. शब्दानुविद्धसमाधिः शब्देन सहित समाधिः। (मंत्र या महावाक्य के शब्दों के सहारे की जाने वाली समाधि।)

590. अद्वैतस्थितिः अद्वैते अवस्थितिः। (दो के भ्रम से उठकर अभेद स्थिति में टिक जाना।)

591. परमव्योमः परमं आकाशम् (चिदाकाश)। (चेतना का वह सर्वोच्च आकाश जहाँ माया प्रवेश नहीं कर सकती।)

592. आत्मसाक्षात्कारः आत्मनः साक्षात् करणम्। (अपनी आत्मा का बिना किसी माध्यम के सीधा और साक्षात अनुभव करना।)

593. प्रमातृदोषः प्रमातुः दोषः। (जानने वाले की बुद्धि का वह दोष या मैल जिसके कारण सत्य साफ़ नहीं दिखता।)

594. संशयनिवृत्तिः संशयस्य पूर्णनिवृत्तिः। (बुद्धि के सब डामाडोल विचारों और शंकाओं का हमेशा के लिए कट जाना।)

595. विपरीतभावना: विपरीत-विचारः। (ज्ञान होने के बाद भी पुरानी आदतों के कारण खुद को फिर से शरीर समझ लेने की भूल।)

596. निदिध्यासन: निरंतर चिन्तनम् इति। (श्रवण और मनन के बाद जाने हुए सत्य पर बुद्धि को लगातार गाड़ कर रखना।)

597. मनन: विचारितस्य पुनः पुनः चिन्तनम्। (गुरु से सुने हुए आत्मज्ञान के वचनों पर तर्क के द्वारा गहराई से विचार करना।)

598. तत्वद्रष्टा: तत्त्वं साक्षात् पश्यति यः। (जिसने सत्य को किताबों में नहीं, बल्कि अपने अनुभव में साक्षात देखा है।)

599. ब्रह्मसायुज्य: ब्रह्मणा सह सायुज्यम् (एकीभावः)। (परमात्मा के ज्योति स्वरूप में पानी की बूंद की तरह विलीन हो जाना।)

600. कैवल्यमुक्ति: केवला सा मुक्तिः। (बिना किसी लोक में गए, यहीं के यहीं शुद्ध आत्मा के परम शांत रूप में लीन हो जाना।)

भाग 7: आचरण, सदाचार और सामाजिक नियम (601-700)

601. धर्म: धार्यते इति धर्मः। (जो समाज, सृष्टि और स्वयं के आत्मिक स्वरूप को पतन से बचाकर धारण किए रखता है।)

602. अहिंसा: न हिंसा अहिंसा। (मन, वचन और कर्म से किसी भी जीव को कष्ट न पहुँचाना।)

603. शौच: शुचेः भावः शौचम्। (बाहर से जल द्वारा शरीर की और भीतर से सद्गुणों द्वारा मन की शुद्धि।)

604. दान: स्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनं च। (निःस्वार्थ भाव से अपनी वस्तु दूसरे के कल्याण के लिए सौंप देना।)

605. सेवा: सेव्यते सुखायते अनया इति सेवा। (बिना किसी फल की इच्छा के दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए कर्म करना।)

606. दया: परदुःखे सति तदपनेतुं इच्छा दया। (किसी दूसरे को दुःखी देखकर उसका दुःख दूर करने की स्वाभाविक तड़प।)

607. करुणा: कृपार्द्रं हृदयं यया सा करुणा। (दीन-दुखियों के प्रति हृदय का पिघल जाना और उन पर कृपा बरसाना।)

608. अस्तेय: न स्तेयम् इति अस्तेयम्। (किसी दूसरे के धन या वस्तु को अन्यायपूर्वक न चुराना।)

609. अपरिग्रह: न परिग्रहः इति अपरिग्रहः। (आवश्यकता से अधिक धन या भोग-सामग्रियों का संचय न करना।)

610. सदाचार: सताम् आचारः इति सदाचारः। (जो समाज के लिए कल्याणकारी और धर्म-सम्मत हो।)

611. नित्य-अनित्य: नित्यं च अनित्यं च। (विवेक की वह कसौटी जिससे यह तय होता है कि क्या अमर है और क्या नश्वर।)

612. लोकसंग्रह: लोकानां संग्रहः इति लोकसंग्रहः। (समाज को सही रास्ता दिखाने के लिए निष्काम भाव से किए जाने वाले कर्म।)

613. परोपकार: परेषां उपकारः इति परोपकारः। (बिना किसी स्वार्थ के केवल दूसरों की भलाई के लिए अपना जीवन लगाना।)

614. कर्तव्यपालन: कर्तव्यस्य पालनम्। (अपने पद, परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारियों को पूरी ईमानदारी से निभाना।)

615. सत्यभाषण: सत्यस्य भाषणम्। (मुँह से हमेशा मीठा और सच बोलना, कभी झूठ का सहारा न लेना।)

616. मधुरवाणी: मधुरा सा वाणी। (ऐसी बोली बोलना जिससे सुनने वाले का मन शांत हो जाए, कड़वाहट न फैलाना।)

617. निन्दापरित्याग: निन्दायाः पूर्णपरित्यागः। (पीठ पीछे किसी की बुराई या कमजोरी की चर्चा करने की गंदी आदत को छोड़ना।)

618. क्षमाशीलता: क्षमाकरणस्य स्वभावः। (दूसरों की बड़ी भूलों को भी बड़े दिल से माफ़ कर देने का दिव्य गुण।)

619. विनम्रता: विनीतायाः भावः विनम्रता। (विद्या और धन आने पर भी अहंकार न करना, सबके आगे झुक कर रहना।)

620. सदाशयता: शुभः आशयः यस्य। (सबके प्रति मन में अच्छे विचार और शुभ भावनाएं रखना।)

621. कृतज्ञता: कृतं जानाति इति कृतज्ञः, तस्य भावः। (किसी के द्वारा किए गए छोटे से उपकार को भी जिंदगी भर याद रखना।)

622. निश्छलता: छलस्य अभावः इति निश्छलता। (मन में कोई कपट, चालाकी या टेढ़ापन न होना, बच्चे जैसा भोलापन होना।)

623. पवित्रता: पवित्रस्य भावः पवित्रता। (गंदे विचारों, अश्लीलता और बेईमानी से मन को साफ़ रखना।)

624. इमानदारी: न्यायपूर्वकं व्यवहारः। (किसी के साथ धोखा न करना, हक की कमाई पर जीना।)

625. संतोषवृत्ति: सन्तोषस्य वृत्तिः (आदत)। (जो मिला है उसमें खुश रहना, दूसरों की चीजें देखकर लार न टपकाना।)

626. धीरजशीलता: धैर्य धारण करने का स्वभाव। (बुरा वक्त आने पर भी अपना आपा न खोना, शांत बने रहना।)

627. लोककल्याण: लोकानां कल्याणम्। (पूरी दुनिया के मनुष्यों, पशु-पक्षियों के भले के लिए सोचना।)

628. मातृवत्परदारेषु: परस्त्रीषु मातुः भावः। (अपनी पत्नी को छोड़कर संसार की सभी स्त्रियों को माता के समान आदर देना।)

629. परद्रव्येषुलोष्ठवत्: परधनेषु लोष्टस्य (मिट्टी के ढेले) भावः। (दूसरे के धन या सोने को मिट्टी के ढेले के समान बेकार समझना।)

630. आत्मवत्सर्वभूतेषु: सर्वजीवेषु आत्मनः भावः। (जैसा दुःख और सुख मुझे होता है, वैसा ही दूसरों को भी होता है—ऐसा समझना।)

631. समानता: समस्य भावः समानता। (जाति, रंग या अमीर-गरीब के भेद से ऊपर उठकर सबको एक समान आदर देना।)

632. भ्रातृभाव: भ्रातुः भावः भ्रातृभावः। (संसार के सभी मनुष्यों को अपने सगे भाई की तरह प्रेम करना।)

633. सद्भावना: समीचिना भावना इति सद्भावना। (दूसरों की कामयाबी देखकर खुश होना, किसी का पतन न चाहना।)

634. निःस्वार्थता: स्वार्थस्य अभावः इति। (कोई भी काम करते समय अपना फायदा न सोचना, केवल सेवा भाव रखना।)

635. उदारचरित: उदारं चरितं यस्य सः। (जिसके लिए पूरी धरती ही उसका अपना परिवार है—*वसुधैव कुटुम्बकम्*।)

636. अतिथिसत्कार: अतिथेः सम्यक् सत्कारः। (द्वार पर आए मेहमान या संत का पैर धोकर और भोजन कराकर आदर करना।)

637. पितृभक्ति: पितुः चरणेषु भक्तिः। (अपने जन्मदाता पिता की सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना।)

638. मातृभक्ति: मातुः चरणेषु भक्तिः। (जिस माँ ने नौ महीने पेट में रखा, उसे भगवान से भी बढ़कर आदर देना।)

639. गुरुभक्ति: गुरोः चरणेषु अनन्यभक्तिः। (ज्ञान देने वाले गुरुदेव के चरणों में अपना सर्वस्व सौंप देना।)

640. मर्यादापालन: मर्यादायाः सम्यक् पालनम्। (भगवान श्री राम की तरह समाज और कुल की सुंदर मर्यादाओं में रहना।)

641. संयमपूर्णजीवन: संयमेन युक्तं जीवनम्। (खान-पान, सोने और जागने में पूरी तरह मर्यादा और संतुलन बनाए रखना।)

642. ब्रह्मचर्यपालन: वीर्यस्य रक्षणम्। (अपनी शारीरिक और मानसिक ऊर्जा को गंदी सोच में न बहाकर पवित्र रखना।)

643. जीवदया: जीवेषु दया इति जीवदया। (रास्ते के कुत्ते, बिल्ली या भूखे पशु को देखकर उसे रोटी देना, दया करना।)

644. पशुरक्षा: पशूनां सम्यक् रक्षा। (मूक पशुओं को कटने या पीटे जाने से बचाना।)

645. पर्यावरणशुद्धिः पर्यावरणस्य शुद्धिः। (पेड़-पौधे लगाना, नदियों को साफ़ रखना और प्रकृति को नुकसान न पहुँचाना।)

646. वृक्षारोपण: वृक्षाणां रोपणम्। (धरती को हरी-भरी बनाने के लिए नए पेड़ लगाना, जो साक्षात पुण्य का काम है।)

647. सेवाभाव: सेवायाः पवित्र भावः। (बीमार, बूढ़े और असहाय लोगों की तन-मन से सेवा करने की तड़प।)

648. शरणरक्षण: शरणागतस्य रक्षा। (जो अपनी जान बचाकर शरण में आ गया है, चाहे वह दुश्मन ही क्यों न हो, उसकी रक्षा करना।)

649. न्यायप्रियता: न्यायः प्रियः यस्य सः। (पक्षपात छोड़कर हमेशा न्याय और सच का ही साथ देना।)

650. सहनशीलता: सोढुं क्षमता सहनशीलता। (दूसरों की कड़वी बातों या गालियों को भी चुपचाप सह जाना, पलटकर जहर न उगलना।)

651. अक्रोधवृत्तिः क्रोधरहिता वृत्तिः। (अपने मन को ऐसा बना लेना कि कोई कितना भी उकसाए, गुस्सा न आए।)

652. मृदुभाषण: मृदु (कोमल) भाषणम्। (जब भी बोलना, अत्यंत कोमल और मीठे शब्दों का ही प्रयोग करना।)

653. सरलव्यवहार: निष्कपटः व्यवहारः। (लेन-देन और बातचीत में पूरी साफ़-गोई रखना, कोई चालाकी न करना।)

654. लोकलाज: लोकानां लज्जा (मर्यादा)। (समाज के डर से कोई ओछा या गंदा काम न करना, मर्यादा में रहना।)

655. कुलमर्यादा: कुलस्य पावन मर्यादा। (अपने खानदान और पूर्वजों के ऊंचे नाम को कभी दाग न लगने देना।)

656. सत्यव्रत: सत्यस्य दृढं व्रतम्। (जिंदगी में चाहे प्राण चले जाएं पर कभी झूठ नहीं बोलूँगा—ऐसा संकल्प।)

657. प्रामाणिकता: यथार्थता सच्चाई च। (अपने काम और वादों के प्रति पूरी तरह पक्का और सच्चा होना।)

658. निष्कपटता: कपटस्य पूर्ण अभावः। (दिल में कुछ और मुँह पर कुछ—ऐसी दोगली नीति का न होना।)

659. परोपकारायफलन्तीवृक्षाः: परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः। (पेड़ अपने फल खुद नहीं खाते, वैसे ही परोपकारी मनुष्य अपना जीवन दूसरों के लिए जीता है।)

660. अमृतवाणी: अमृततुल्या सा वाणी। (महापुरुषों के वे वचन जो दुखी दिल पर मरहम का काम करते हैं।)

661. साधुता: साधोः भावः साधुता। (पवित्र, सरल और सज्जन पुरुषों जैसा श्रेष्ठ व्यवहार होना।)

662. शिष्टता: शिष्टस्य भावः शिष्टता। (बड़ों को आदर और छोटों को प्यार देने का सुंदर सलीका।)

663. सहानुभूतिः समानुभूतिः (दुःखानुभवः)। (दूसरे के दुःख को देखकर खुद भी वैसा ही दुःख महसूस करना और मदद करना।)

664. त्यागभावना: त्यागस्य पवित्रा भावना। (दूसरों की खुशी के लिए अपनी सुख-सामग्रियों को हंसते-हंसते छोड़ देना।)

665. उदारहृदय: विशालं हृदयं यस्य सः। (जिसका दिल बहुत बड़ा है, जो किसी की छोटी गलतियों पर रूठता नहीं।)

666. संस्कारवान: संस्का रैः युक्तः पुरुषः। (जो बचपन से ही माता-पिता के अच्छे और धार्मिक संस्कारों को जीता है।)

667. धार्मिकता: धर्मस्य आचरणम् इति। (दिखावे की पूजा नहीं, बल्कि जीवन में सत्य और न्याय के नियमों को जीना।)

668. अनासक्तकर्म: आसक्तिरहितं कर्म। (दुनिया में अपने सारे काम जिम्मेदारी से करना पर उनके फल से दिल को न बांधना।)

669. निष्कामता: कामनानां पूर्ण अभावः। (कोई भी सेवा या पुण्य करते समय बदले में वाह-वाही या धन की इच्छा न रखना।)

670. ईश्वरभीरुत्व: ईश्वरात् भयः (पापकर्मे)। (यह सोचकर पाप न करना कि सीसीटीवी की तरह ऊपर वाला सब देख रहा है।)

671. सत्यपथ: सत्यस्य पावन मार्गः। (दुनिया चाहे जो कहे, हमेशा सच और धर्म के रास्ते पर ही चलना।)

672. न्यायपथ: न्यायस्य सीधा मार्गः। (कठिन से कठिन परिस्थिति में भी बेईमानी या अन्याय का रास्ता न चुनना।)

673. सज्जनता: सतां भावः सज्जनता। (दुष्टों के बीच रहकर भी अपनी भलाई और सज्जनता को न छोड़ना।)

674. पवित्रचरित्र: पवित्रं चरितं यस्य सः। (जिसके चरित्र पर कामुकता, वासना या दाग की एक भी छीट नहीं है।)

675. शीलगुण: शीलस्य दिव्य गुणः। (मनुष्य का वह ऊंचा नैतिक चरित्र जो उसकी असली सुंदरता है।)

676. मर्यादापुरुषोत्तम: मर्यादासु पुरुषेषु उत्तमः। (मर्यादाओं का पालन करने वाले पुरुषों में सबसे श्रेष्ठ, जैसे श्री राम।)

677. लोकमंगल: लोकानां मंगलम् (शुभम्)। (पूरी दुनिया का केवल भला और शुभ चाहने का सुंदर भाव।)

678. अहिंसापरमोधर्मः: अहिंसा एव परमो धर्मः। (सनातन शास्त्र का सिद्धांत कि किसी जीव को न मारना ही सबसे बड़ा धर्म है।)

679. सत्यमेवजयते: सत्यं एव जयते (विजयी भवति)। (झूठ चाहे कितना भी शक्तिशाली हो, जीत अंत में हमेशा सच की ही होती है।)

680. धर्मोरक्षतिरक्षितः: धर्मः रक्चति रक्षितः। (यदि तुम धर्म और न्याय की रक्षा करोगे, तो संकट के समय धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।)

681. सदाचारपरमोधर्मः: सदाचारः एव परमो धर्मः। (अच्छा और पवित्र आचरण ही मनुष्य का सबसे बड़ा गहना और धर्म है।)

682. शुभकामना: शुभं कामयते इति सा। (मित्र हो या शत्रु, सबके जीवन में मंगल और खुशहाली आए—ऐसी प्रार्थना।)

683. कल्याणकारी: कल्याणं करोति इति सः। (जिसका मिलना या जिसकी बातें हमेशा समाज का भला ही करती हैं।)

684. निश्स्वार्थसेवा: स्वार्थरहिता सेवा इति। (बिना एक भी रुपया या बड़ाई लिए चुपचाप भूखों को खाना खिलाना या सेवा करना।)

685. आत्मअनुशासन: आत्मनः अनुशासनम्। (किसी के बिना कहे खुद ही अपने जीवन को नियमों और पवित्रता में बांध कर रखना।)

686. कर्तव्यपरायणता: कर्तव्ये तत्परता इति। (अपने काम के प्रति पूरी तरह समर्पित होना, कामचोरी न करना।)

687. सत्यनिष्ठा: सत्ये सुदृढा निष्ठा। (सिर कट जाए पर सच का साथ नहीं छोड़ूंगा—ऐसी पक्की निष्ठा।)

688. अविचलश्रद्धा: अचला पवित्रा श्रद्धा। (मुश्किलों का पहाड़ टूटने पर भी भगवान पर से भरोसा न उठना।)

689. सदाचारमूलक: सदाचारेण निर्मितः। (वह समाज या परिवार जिसकी नींव अच्छे चरित्र और सदाचार पर टिकी है।)

690. पवित्रआचरण: पवित्रं आचरणम् इति। (तन और मन से पूरी तरह साफ़-सुथरा और मर्यादित व्यवहार करना।)

691. सज्जनसंगति: सज्जनानां संगतिः इति। (अच्छे, विद्वान और चरित्रवान लोगों के साथ उठना-बैठना।)

692. कुसङ्गपरित्याग: कुत्सितसङ्गस्य परित्यागः। (शराबी, जुआरी या चोर लोगों की संगति को लात मारकर दूर हो जाना।)

693. नीतिमार्ग: नीतेः सुंदर मार्गः। (चाणक्य या विदुर नीति के अनुसार मर्यादा और अक्लमंदी से जीवन जीना।)

694. सत्यव्रती: सत्यस्य व्रती इति सः। (जिसने बचपन से ही केवल सच बोलने का कड़ा व्रत ले रखा है।)

695. धर्मपरायण: धर्मे परायणः इति सः। (जो अपने जीवन के हर छोटे-बड़े फैसले में धर्म को सबसे आगे रखता है।)

696. पवित्रहृदय: पवित्रं हृदयं यस्य सः। (जिसके दिल में किसी के लिए कोई बैर, नफ़रत या गंदी वासना नहीं है।)

697. लोकहित: लोकानां हितम् इति लोकहितम्। (अपनी सुख-सुविधाओं को छोड़कर समाज के भले के लिए काम करना।)

698. परदुःखकातर: परदुःखे कातरः (दुःखी)। (दूसरे की आँख में आँसू देखकर जिसका अपना दिल तड़प उठता है।)

699. उदारमना: उदारं मनः यस्य सः। (छोटे विचारों से ऊपर उठकर विशाल और दिव्य सोच रखने वाला पुरुष।)

700. सच्चामानव: यथार्थः मानवः इति। (जिसके भीतर दया, करुणा, सत्य और लज्जा जैसे सभी मानवीय गुण मौजूद हैं।)

भाग 8: कर्म, प्रारब्ध, काल और नियति (701-800)

701. कर्म: क्रियते इति कर्म। (मन, वाणी या शरीर द्वारा की जाने वाली कोई भी चेष्टा या क्रिया।)

702. संस्कार: संस्क्रियते शोध्यते अनेन इति संस्कारः। (वह क्रिया जो मन को शुद्ध करे; कर्मों के सूक्ष्म प्रभाव।)

703. संचित: सम्यक् चितं इति संचितम्। (अनंत जन्मों से इकट्ठा कर्मों का भंडार जो अभी फल देने को तैयार नहीं है।)

704. प्रारब्ध: प्रकर्षेण आरब्धं इति प्रारब्धम्। (संचित कर्मों का वह हिस्सा जो इस जन्म में सुख-दुःख के रूप में प्रकट हुआ है।)

705. क्रियमाण: क्रियते इति क्रियमाणम्। (वे कर्म जिन्हें हम वर्तमान जीवन में अभी इस समय कर रहे हैं।)

706. नियति: निश्चितं यमनं इति नियतिः। (ब्रह्मांड का वह अटूट नियम जिसके तहत हर घटना पूर्व निश्चित व्यवस्था से घटती है।)

707. ऋतम्: ऋच्छति गच्छति इति ऋतम्। (वह परम प्राकृतिक और नैतिक व्यवस्था जिसके कारण पूरा ब्रह्मांड नियम से चलता है।)

708. कल्प: कल्प्यते रच्यते जगत् अनेन इति कल्पः। (ब्रह्मा जी का एक दिन, जो सृष्टि और प्रलय का एक बहुत बड़ा कालचक्र है।)

709. मन्वन्तर: मनोः अन्तरम् इति मन्वन्तरम्। (एक मनु के शासन की अवधि; समय नापने की वैदिक इकाई।)

710. प्रारब्धक्षय: प्रारब्धकर्मणाम् क्षयः। (पूर्वकर्मों के फलों का पूरी तरह भोगकर समाप्त हो जाना।)

711. पुरुषार्थ: पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थः। (मानव जीवन के चार परम लक्ष्य: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।)

712. कालचक्र: कालस्य चक्रम् इति कालचक्रम्। (समय का वह पहिया जो राजा को रंक और रंक को राजा बनाता रहता है।)

713. कर्मफल: कर्मणः फलम् इति कर्मफलम्। (अच्छे या बुरे काम के बदले में मिलने वाला सुख या दुःख का नतीजा।)

714. कर्मबंधन: कर्मणा बन्धनम् इति कर्मबन्धनम्। (कर्मों के फल के लालच में फंसकर बार-बार जन्म लेने का चक्र।)

715. निष्कामकर्म: कामनारहितं कर्म इति। (बिना किसी स्वार्थ या फल की इच्छा के केवल कर्तव्य मानकर किया गया काम।)

716. सकामकर्म: कामनासहितं कर्म इति। (धन, नाम या स्वर्ग पाने की लालच से किया जाने वाला कर्म।)

717. विहितकर्म: शास्त्रोक्तं कर्म इति विहितकर्म। (वे श्रेष्ठ काम जिन्हें करने की आज्ञा शास्त्रों ने दी है, जैसे दान-पुण्य।)

718. प्रतिषिद्धकर्म: शास्त्रविरुद्धं कर्म इति। (वे गंदे काम जिन्हें करने से शास्त्रों ने मना किया है, जैसे चोरी या हिंसा।)

719. नित्यकर्म: प्रतिदिनं करणीय कर्म। (रोज सुबह-शाम किए जाने वाले जरूरी काम, जैसे स्नान, पूजा या माता-पिता को प्रणाम।)

720. नैमित्तिककर्म: निमित्ते सति करणीय कर्म। (किसी खास मौके पर किए जाने वाले काम, जैसे बच्चे के जन्म पर संस्कार या श्राद्ध।)

721. प्रायश्चित्तकर्म: पापनाशाय करणीय कर्म। (हुई भूल या पाप का दाग धोने के लिए किया जाने वाला तप या व्रत।)

722. अकर्म: कर्मणः अभावः (चित्तस्थैर्यम्)। (कर्म करते हुए भी अहंकार न होने के कारण कर्म के बंधन से मुक्त होना।)

723. विकर्म: विरुद्धं कर्म इति विकर्म। (शास्त्रों के नियमों को तोड़कर किया जाने वाला भयंकर पाप कर्म।)

724. कर्मसंन्यास: कर्मणाम् संन्यासः (त्यागः)। (कर्तापन के घमंड को छोड़कर सब कर्मों को भगवान के चरणों में सौंप देना।)

725. भाग्य: भज्यते प्राप्यते पूर्वकर्मणा इति भाग्यम्। (पूर्व जन्मों के पुण्य के कारण इस जन्म में मिलने वाली अनुकूलता।)

726. नियतिवाद: नियतेः सिद्धान्तः। (यह दार्शनिक सोच कि दुनिया में जो कुछ भी हो रहा है, वह पहले से ही तय है।)

727. महाप्रलय: महान् प्रलयः इति महाप्रलयः। (ब्रह्मा जी की आयु पूरी होने पर पूरे ब्रह्मांड का मूल प्रकृति में विलीन हो जाना।)

728. खण्डप्रलय: लघु प्रलयः इति खण्डप्रलयः। (ब्रह्मा जी का एक दिन पूरा होने पर तीनों लोकों का जल में डूब जाना।)

729. नित्यप्रलय: प्रतिदिनं विनाशः इति नित्यप्रलयः। (रोजाना नींद में जीव का संसार से छूटना या रोज होने वाली जीवों की मृत्यु।)

730. कालरात्रि: कालस्य भयङ्करा रात्रिः। (प्रलय के समय की वह घने अंधकार वाली रात जब सब कुछ नष्ट हो जाता है।)

731. महारोरावः भयङ्करः नरकविशेषः। (गरुड़ पुराण के अनुसार भयंकर पापियों को तपाने वाला एक भयानक नरक।)

732. पुनर्जन्म: पुनः पुनः जन्म इति पुनर्जन्म। (वासना और कर्मों का हिसाब पूरा करने के लिए आत्मा का नया शरीर धारण करना।)

733. कर्मगति: कर्मणः सूक्ष्मा गतिः। (कर्म का वह अदृश्य और जटिल नियम जिसे बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं समझ पाते।)

734. कालपुरुष: कालः एव पुरुषः (ईश्वरः)। (समय के रूप में सबका संहार करने वाला भगवान का एक विराट रूप।)

735. सत्ययुग: सत्यप्रधानः कालः। (सृष्टि का पहला युग जब चारों पैर धर्म के थे, जहाँ केवल सच और पवित्रता थी।)

736. त्रेतायुग: ज्ञानप्रधानः कालविशेषः। (सृष्टि का दूसरा युग जब भगवान श्री राम का अवतार हुआ था।)

737. द्वापरयुग: यज्ञप्रधानः कालविशेषः। (सृष्टि का तीसरा युग जब भगवान श्री कृष्ण धरती पर आए थे।)

738. कलयुग: कलहप्रधानः कालः। (सृष्टि का चौथा और आखिरी युग जहाँ पाप और चंचलता की प्रचुरता है।)

739. चतुर्युगी: चतुर्णां युगानां समूहः। (सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग का सम्मिलित एक पूरा चक्र।)

740. मरणकाल: मृत्योः पावन समयः। (शरीर को छोड़कर जीवात्मा की आगे की यात्रा शुरू होने का समय।)

741. यमदूत: यमराजस्य दूताः। (पापियों की आत्मा को घसीटकर ले जाने वाले यमराज के भयंकर सेवक।)

742. देवयानमार्क: देवानां पावन मार्गः। (शुक्ल पक्ष का वह दिव्य मार्ग जिससे जाने वाले योगी सीधे ब्रह्मलोक जाते हैं और लौटते नहीं।)

743. पितृयानमार्ग: पितृणाम् मार्गः। (कृष्ण पक्ष का वह मार्ग जिससे जाने वाले कर्मी लोग स्वर्ग का सुख भोगकर वापस धरती पर आते हैं।)

744. नरकवास: नरके वासः इति नरकवासः। (अपने बुरे कर्मों की सजा भोगने के लिए भयंकर यातना गृहों में रहना।)

745. स्वर्गवास: स्वर्गे वासः इति स्वर्गवासः। (पुण्य कर्मों के फल स्वरूप अप्सराओं और अमृत वाले सुखद लोक में कुछ समय बिताना।)

746. कर्मकुशलता: कर्मसु कौशलम् इति। (गीता के अनुसार कर्म को इस चालाकी से करना कि उसका बंधन न बने, बल्कि वह मोक्ष का कारण बने।)

747. अविनाशीकर्मः न विनाशी कर्म इति। (ईश्वर के निमित्त किया गया वह काम जिसका फल कभी नष्ट नहीं होता, सदा साथ रहता है।)

748. प्रारब्धभोगः प्रारब्धस्य भोगः इति। (पूर्व जन्म के कारण मिले हुए सुख या दुःख को हंसते-हंसते धीरज से सहना।)

749. कालजयीः कालं जयति इति कालजयी। (वह महापुरुष जो आत्मज्ञान पाकर समय और मृत्यु के बंधनों से ऊपर उठ चुका है।)

750. संसारचक्रः संसारस्य जन्म-मरण चक्रम्। (बार-बार पैदा होना और बार-बार मरना—इस अंतहीन कोल्हू के बैल की तरह घूमना।)

751. कर्मबीजः कर्मणः सूक्ष्म बीजम्। (हमारे द्वारा किए गए काम का वह अदृश्य बीज जो चित्त में छिप जाता है और समय आने पर सुख-दुःख का पेड़ बनता है।)

752. भोगभूमिः केवलं भोगाय भूमिः (स्वर्गः)। (वह स्थान जहाँ केवल कर्मों का फल भोगा जाता है, नया कर्म नहीं किया जा सकता, जैसे स्वर्ग या नरक।)

753. कर्मभूमिः कर्मणे प्रधाना भूमिः (पृथ्वी)। (यह पावन धरती जहाँ मनुष्य अपनी मर्जी से नए कर्म करके अपना भाग्य बदल सकता है।)

754. ऋणानुबंधः ऋणस्य अनुबन्धः (रिश्ता)। (पिछले जन्मों के लेन-देन के कारण इस जन्म में माता, पिता या शत्रु के रूप में मिलना।)

755. जीवावधिः जीवस्य आयुः सीमा। (इस शरीर में रहने के लिए नियति द्वारा तय की गई साँसों की निश्चित गिनती।)

756. क्षणभंगुरः क्षणे भङ्गुरं (नाशवान)। (पानी के बुलबुले की तरह यह जीवन और संसार जो एक पल में नष्ट हो सकता है।)

757. अमोघकालः न मोघः (व्यर्थः) कालः। (समय की वह अचल रफ्तार जो कभी किसी का इंतजार नहीं करती, सबको बूढ़ा कर देती है।)

758. कर्मशुद्धिः कर्मणः सम्यक् शुद्धिः। (अपने कर्मों से स्वार्थ और घमंड को निकालकर उन्हें गंगा जल जैसा पवित्र बनाना।)

759. कालमहिमाः कालस्य महती महिमा। (समय का वह अदृश्य नियम जो बड़े-बड़े किलों को मिट्टी में मिला देता है।)

760. अदृष्टः न दृष्टं इति अदृष्टम्। (हमारे पूर्व कर्मों का वह अदृश्य खाता जो भाग्य बनकर हमारे सामने आता है।)

761. कर्मयोगः कर्मणा योगः इति कर्मयोगः। (संसार के सारे काम भगवान की पूजा समझकर निष्काम भाव से करने का विज्ञान।)

762. वासनाबीजः वासनायाः सूक्ष्म बीजम्। (मन में छिपा हुआ इच्छा का वह छोटा सा दाना जो नया जन्म लेने पर मजबूर करता है।)

763. कालदण्डः कालस्य शक्तिशाली दण्डः। (समय की वह मार जिससे ब्रह्मांड का कोई भी राजा या पापी बच नहीं सकता।)

764. प्रकृतिनियमः प्रकृतेः अटूट नियमः। (अग्नि का जलाना और जल का शीतलता देना—प्रकृति का कभी न बदलने वाला कानून।)

765. आयुःक्षयः आयुषः शनैः क्षयः। (साँसों की पूंजी का हर पल धीरे-धीरे घटते जाना।)

766. देहान्तः देहस्य अन्तः इति देहान्तः। (मिट्टी के इस पुतले का वापस मिट्टी में मिल जाने का निश्चित समय।)

767. कर्मचेष्टाः कर्मणे शारीरिक चेष्टा। (जीवन को चलाने के लिए तन और मन द्वारा की जाने वाली हलचल।)

768. महाकालः कालानां अपि कालः। (जो समय को भी खा जाता है, भगवान शिव का वह परम विनाशकारी रूप।)

769. अकालमृत्युः अकाले (पूर्व) मृत्युः इति। (योग शास्त्र के अनुसार भयंकर दुर्घटना या पाप के कारण समय से पहले शरीर का छूट जाना।)

770. दीर्घायुः दीर्घा आयुः यस्य सः। (श्रेष्ठ नियमों और प्राणायाम के बल पर लंबी उम्र पाने वाला पुरुष।)

771. कालज्ञः कालं जानाति इति कालज्ञः। (वह त्रिकालदर्शी ऋषि जो जानता है कि कौन सी घटना किस सेकंड घटने वाली है।)

772. अटलबलः न टलति तत् बलम् (नियति)। (होनी या विधाता का लिखा वह लेख जिसे कोई टाल नहीं सकता।)

773. कर्मपरिपक्वः कर्मणाम् पूर्ण पाकः। (कर्म के बीज का पूरी तरह पक कर सुख या दुःख के फल के रूप में सामने आना।)

774. संस्कारजालः संस्काराणां विशालं जालम्। (चित्त पर छपे जन्मों-जन्मों के प्रभावों का वह ताना-बाना जो मनुष्य को नचाता है।)

775. मृत्युलोकः मरणशीलानां लोकः (पृथ्वी)। (यह ब्रह्मांड का वह कोना जहाँ जो आया है, उसका मरना निश्चित है।)

776. भवाब्धिः भव (संसार) एव अब्धिः (समुद्रः)। (जन्म और मरण की भयंकर लहरों वाला यह दुखों का भवसागर।)

777. ब्रह्मदिनः ब्रह्मणः एकं दिनम्। (४ अरब ३२ करोड़ इंसानी साल के बराबर का समय।)

778. कल्पान्तः कल्पस्य अन्तः (प्रलयः)। (एक कल्प पूरा होने पर होने वाला महाविनाश।)

779. कर्मसाक्षीः कर्मणः द्रष्टा (ईश्वरः)। (सूर्य, चंद्रमा और हमारी अंतरात्मा जो हमारे हर छिपे पाप और पुण्य को साक्षात देख रहे हैं।)

780. कालसीमाः कालस्य निश्चित सीमा। (हर वस्तु और ब्रह्मांड के टिकने की विधाता द्वारा तय की गई अंतिम तारीख।)

781. प्रारब्धकर्मः आरब्धं कर्म इति प्रारब्धम्। (तीर कमान से छूट चुका है, वैसे ही इस शरीर को देने वाले पूर्व कर्म।)

782. कर्मसाम्यः कर्मणाम् समता (पुण्य-पापयोः)। (पुण्य और पाप का तराजू जब बराबर हो जाता है, तब गुरु कृपा से आत्मज्ञान का रास्ता खुलता है।)

783. कालकूटः भयङ्करं विषम्। (समुद्र मंथन से निकला वह भयानक जहर जो सृष्टि को भस्म करने वाला था, जिसे शिव ने पी लिया।)

784. क्षणजीविः क्षणं जीवति इति। (पानी के बुलबुले या मच्छर की तरह बहुत छोटी जिंदगी जीने वाला जीव।)

785. अविनाशीपुण्यः न विनाशी पुण्यम्। (निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा का वह खाता जो सात जन्मों तक जीव की रक्षा करता है।)

786. कर्मदाहः कर्मणाम् पूर्ण दाहः। (ज्ञान की अग्नि में संचित कर्मों के विशाल भंडार का जलकर राख हो जाना।)

787. कालनिधिः कालस्य असीम निधिः। (समय का वह असीम खजाना जो कभी खत्म नहीं होता।)

788. अमोघवाक्यः न मोघः नियमः (विधाता)। (भगवान के वे कानून जिन्हें ब्रह्मांड का कोई भी वैज्ञानिक बदल नहीं सकता।)

789. भवचक्रः भवस्य (जन्म-मरणस्य) चक्रम्। (चौरासी लाख योनियों के चक्कर में जीव का अंतहीन घूमना।)

790. अदृष्टफलः अदृश्यं कर्मफलम्। (किसी पुण्य का वह अदृश्य शुभ नतीजा जो अचानक संकट के समय हमारी जान बचाता है।)

791. कर्मविपाकः कर्मणाम् विशिष्ट पाकः। (किए गए कर्मों का पूरी तरह पक कर अपना अंतिम असर दिखाना।)

792. मृत्युंजयः मृत्युं जयति इति मृत्युञ्जयः। (अपनी आत्मा को जानकर मौत के डर को हमेशा के लिए जीत लेने वाला महायोगी।)

793. कालप्रवाह: कालस्य निरन्तर प्रवाहः। (समय की वह नदी जिसमें ब्रह्मांड के करोड़ों राजा और सभ्यताएं बहकर गायब हो गईं।)

794. प्रकृतिवश: प्रकृतेः अधीनः इति। (जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, जीव का प्रकृति के तीन गुणों के इशारे पर कठपुतली की तरह नाचना।)

795. कालदूत: कालस्य भयङ्कराः दूताः। (मौत का बुलावा लेकर आने वाले सूक्ष्म यमदूत।)

796. कर्मन्यास: कर्मणाम् संन्यासः। (गीता के अनुसार कर्म करते हुए भी फल को श्री कृष्ण के चरणों में त्याग देना।)

797. भवतारण: भवाब्धिं तारयति इति। (प्रभु का वह पावन नाम या गुरु की नाव जो भवसागर से पार उतार देती है।)

798. कालमुद्रा: कालस्य अङ्कनम् (बुढ़ापा)। (चेहरे पर झुर्रियां और सफेद बाल—समय द्वारा लगाई गई बुढ़ापे की मुहर।)

799. ब्रह्मरात्रि: ब्रह्मणः रात्रिः। (ब्रह्मांड के प्रलय की वह लंबी अवधि जब ब्रह्मा जी सो जाते हैं और सृष्टि शांत रहती है।)

800. अटलनियम: न टलति यः नियमः। (ईश्वर का वह शाश्वत कानून कि जो पैदा हुआ है, उसका अंत निश्चित है।)

भाग 9: शास्त्र, ग्रंथ, दीक्षा और पवित्र अनुष्ठान (801-900)

801. उपनिषद: उप नि सद्। (ब्रह्मज्ञान के लिए गुरु के समीप निष्ठापूर्वक बैठना।)

802. तीर्थ: तीर्यते अनेन इति तीर्थम्। (जिसके माध्यम से मनुष्य संसार-सागर के पापों और कष्टों से तर जाए।)

803. अतिथि: न विद्यते तिथिः यस्य सः। (जिसके आने की कोई निश्चित तिथि न हो; साक्षात नारायण रूप।)

804. शास्त्र: शासनात् त्रायते इति शास्त्रम्। (जो अनुशासन सिखाकर कुमार्ग पर जाने से रक्षा करता है।)

805. पुराण: पुरा नवं भवति इति पुराणम्। (जो प्राचीन होते हुए भी हर काल में नया और प्रासंगिक प्रतीत हो।)

806. इतिहास: इति ह आस इति इतिहासः। ("ऐसा निश्चित ही घटित हुआ था" - सत्यों को समझाने वाली कथाएँ।)

807. दर्शन: दृश्यते यथार्थतत्त्वं अनेन इति दर्शनम्। (वह विधा जिसके माध्यम से सृष्टि और परमेश्वर के वास्तविक रूप का साक्षात्कार हो।)

808. आश्रम: आ-श्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रमः। (जहाँ रहकर मनुष्य आत्म-कल्याण के लिए आध्यात्मिक श्रम करता है।)

809. संन्यास: सम्यक् न्यासः इति संन्यासः। (सब प्रकार के सांसारिक मोह और अहंता का पूर्ण रूप से त्याग कर देना।)

810. मोद / प्रमोद: मोदते इति मोदः। (ईश्वर की झलक पाकर मन में होने वाला गहरा आध्यात्मिक आनंद।)

811. दीक्षा: दीयते ज्ञानं क्षीयते पापानि यया सा। (गुरु द्वारा दिया जाने वाला वह व्रत जिससे ज्ञान उदय और पाप नष्ट होते हैं।)

812. तर्पणम्: तृप्यन्ति पितरो अनेन इति तर्पणम्। (जल और तिल द्वारा अपने दिवंगत पूर्वजों को तृप्त करने की क्रिया।)

813. अग्निहोत्र: अग्नौ हूयते इति अग्निहोत्रम्। (देवताओं की प्रसन्नता और पर्यावरण शुद्धि के लिए रोज दी जाने वाली आहुति।)

814. संकल्प: सम्यक् कल्पते मनसा इति सङ्कल्पः। (धार्मिक कार्य को शुरू करने से पहले उसे पूरा करने की ली जाने वाली प्रतिज्ञा।)

815. नैवेद्य: निवेद्यते देवाय इति नैवेद्यम्। (अत्यंत शुद्धता और प्रेम से तैयार भोजन, जो भगवान को भोग लगाया जाता है।)

816. प्राजापत्य: प्रजापतेः अयम्। (शास्त्रों में बताया गया एक कठिन व्रत जिससे पुराने पापों का प्रायश्चित होता है।)

817. अभिषेक: अभितः सिच्यते इति अभिषेकः। (मंत्रपूत जल, दूध आदि द्वारा भगवान के विग्रह को स्नान कराना।)

818. प्रदक्षिणा: प्रकृष्टेन दक्षिणभागे गमनम्। (भगवान को केंद्र में रखकर उनके चारों ओर घूमना।)

819. वेद: विद् ज्ञाने इति वेदः। (ईश्वर के साक्षात श्वास से निकले ज्ञान के वे चार अमर ग्रंथ जो ब्रह्मांड का मूल सत्य हैं।)

820. श्रुति: श्रूयते इति श्रुतिः (वेदाः)। (ऋषियों द्वारा समाधि की अवस्था में सीधे परमात्मा से सुने गए दिव्य मंत्र।)

821. स्मृति: स्मर्यते इति स्मृतिः। (ऋषियों द्वारा समाज को मर्यादा में चलाने के लिए लिखे गए नियम, जैसे मनुस्मृति।)

822. संहिता: सम्यक् हिता (एकत्रिता) मन्त्रभागः। (वेदों का वह मुख्य भाग जिसमें देवताओं की सुंदर स्तुतियाँ और मंत्र भरे हैं।)

823. ब्राह्मणग्रन्थ: ब्रह्म (मन्त्र) व्याख्यानग्रन्थः। (वेदों का वह हिस्सा जो यज्ञों की गूढ़ विधियों और कहानियों को समझाता है।)

824. आरण्यक: अरण्ये पठ्यते इति आरण्यकम्। (घने जंगलों और एकांत आश्रमों में पढ़े जाने वाले वेदों के रहस्यमयी ग्रंथ।)

825. वेदाङ्ग: वेदस्य अङ्गानि इति वेदाङ्गानि। (वेदों को शुद्ध समझने के ६ अंग: शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष।)

826. ब्रह्मसूत्र: ब्रह्मणः सूचकं सूत्रम्। (महर्षि व्यास का वह अत्यंत कठिन ग्रंथ जो उपनिषदों के ज्ञान को धागे की तरह पिरोता है।)

827. महापुराण: महान् च असौ पुराणः। (व्यास जी द्वारा लिखे गए १८ मुख्य पुराण जैसे शिवपुराण, विष्णुपुराण आदि।)

828. वेदांत: वेदस्य अन्तः (अन्तिम भागः)। (उपनिषदों का वह सर्वोच्च ज्ञान जो आत्म-साक्षात्कार की आखिरी सीढ़ी है।)

829. गायत्रीमन्त्र: गायन्तं त्रायते इति गायत्री। (वेदों का वह महामंत्र जो इसका गान करने वाले की बुद्धि को दिव्य प्रकाश से भर देता है।)

830. महामृत्यंजय: महान् मृत्युञ्जय मन्त्रः। (ऋग्वेद का वह गुप्त मंत्र जो अकाल मृत्यु को टालकर लंबी उम्र देता है।)

831. अजपागायत्री: प्रयत्नहीना गायत्री। (हमारी साँसों के आने-जाने से होने वाला स्वाभाविक सोऽहम् का जप।)

832. दीक्षागुरु: दीक्षां ददाति इति। (वे कान में गुरुमंत्र देकर शिष्य का नया आध्यात्मिक जन्म कराने वाले महापुरुष।)

833. शिक्षागुरु: शिक्षां (शास्त्रज्ञानं) ददाति यः। (जो शास्त्रों के कठिन अर्थों और नियमों को सरल भाषा में समझाते हैं।)

834. शक्तिपात: शक्तेः पातः (संक्रमणम्)। (सिद्ध गुरु द्वारा अपनी आँख, स्पर्श या संकल्प से शिष्य के भीतर कुण्डलिनी को जगाना।)

835. गुरुमन्त्र: गुरोः मुखात् निर्गतः मन्त्रः। (गुरु द्वारा दिया गया वह गुप्त नाम जो चेतना की सोई हुई परतों को जगा देता है।)

836. मन्त्रदीक्षा: मन्त्रेण दीक्षा इति। (पवित्र नियम और व्रत के साथ गुरु से नाम दान पाने का पावन उत्सव।)

837. संन्यासदीक्षा: संन्यासाय दीक्षा। (संसार के कपड़ों और मोह को छोड़कर गेरुवे वस्त्र और तपस्या का जीवन चुनने का व्रत।)

838. यज्ञोपवीत: यज्ञाय उपवीतम् (सूत्रम्)। (तीन धागों वाला वह पवित्र जनेऊ जो मनुष्य को गायत्री और धर्म के नियमों में बांधता है।)

839. मुण्डनसंस्कार: केशानां पूर्ण कर्तनम्। (सिर के पुराने बाल कटवाकर अशुद्धि को दूर करने का पावन संस्कार।)

840. षोडशसंस्कार: षोडश पवित्राः संस्काराः। (सनातन धर्म में जन्म से लेकर मृत्यु तक के १६ अनिवार्य संस्कार जैसे विवाह, अंत्येष्टि।)

841. सोमयाग: सोमरसेन क्रियते यः यागः। (वेदों में बताया गया एक अत्यंत पवित्र और बड़ा ऐश्वर्यशाली यज्ञ।)

842. अश्वमेध: अश्वस्य मेधः (यज्ञः)। (चक्रवर्ती राजा द्वारा पूरी धरती पर अपनी विजय पताका फहराने के लिए किया जाने वाला महायज्ञ।)

843. राजसूय: राज्ञः सूयते (अभिषेकाय) यज्ञः। (केवल सम्राटों द्वारा अपने राज्य की सुख-शांति के लिए किया जाने वाला भव्य यज्ञ।)

844. होम: हूयते अग्नौ इति होमः। (पवित्र समिधा और घी के द्वारा छोटी वेदी में रोज दी जाने वाली आहुति।)

845. हविष्य: अग्नौ हवनाय योग्यं अन्नम्। (यज्ञ में आहुति देने योग्य अत्यंत शुद्ध सामग्री जैसे जौ, तिल और गाय का घी।)

846. यज्ञवेदी: यज्ञस्य पवित्रा वेदी। (शास्त्रों के नाप-जोख के अनुसार मिट्टी से बनाई गई सुंदर चौकोर यज्ञशाला।)

847. समिधा: सम्यक् इध्यते (प्रज्वाल्यते) अनया। (यज्ञ की पवित्र अग्नि को जलाने वाली विशेष पेड़ की लकड़ियाँ जैसे आम या पीपल।)

848. वषट्कार: वषट् इति शब्दकरणम्। (यज्ञ में आहुति डालते समय देवताओं के लिए बोला जाने वाला अत्यंत शक्तिशाली शब्द।)

849. स्वाहाकार: स्वाहा इति शब्दोच्चारणम्। (मंत्र के अंत में अग्नि देव की पत्नी 'स्वाहा' का नाम लेकर आहुति अर्पण करना।)

850. स्वधाकार: स्वधा इति शब्दोच्चारणम्। (अपने पूर्वजों या पितरों को तर्पण देते समय बोला जाने वाला पावन शब्द।)

851. महाआरती: महती च सा आरती। (सैकड़ों दीयों और शंखध्वनि के साथ गंगा किनारे या बड़े मंदिरों में होने वाली भव्य वंदना।)

852. मन्त्रपुष्पांजलि: मन्त्रैः पुष्पमयी अञ्जलिः। (यज्ञ या पूजा के अंत में वेदों के राजा-मंत्रों को बोलकर भगवान को फूल चढ़ाना।)

853. पंचामृत: पञ्च अमृतातुल्याः पदार्थाः। (दूध, दही, घी, शहद और शक्कर का वह दिव्य मिश्रण जिससे भगवान का अभिषेक होता है।)

854. चरणोदक: चरणयोः पावन जलम्। (ठाकुर जी के चरणों से छुआ हुआ वह जल जो सब रोगों और पापों को सुखा देता है।)

855. शालिग्राम: पवित्र शिलाविशेषः। (गंडकी नदी में मिलने वाला काले रंग का गोल पत्थर जिसे साक्षात नारायण का रूप माना जाता है।)

856. शिवलिंग: शिवस्य पवित्रं लिङ्गम् (प्रतीकः)। (परमात्मा के निराकार और ब्रह्मांडीय स्वरूप को दिखाने वाला पवित्र विग्रह।)

857. रुद्राक्ष: रुद्रस्य अक्षि (आँसू)। (भगवान शिव के आंसुओं से बना वह चमत्कारी मनका जिसे गले में पहनने से मन शांत होता है।)

858. चंदनलेप: चन्दनस्य शीतलः लेपः। (भगवान के मस्तक पर केसर और चंदन का ठंडा तिलक लगाना।)

859. धूपदीप: धूपः च दीपः च। (सुगंधित गूगल की धूप और गाय के घी का दीया जो मंदिर की ऊर्जा को सात्विक बनाते हैं।)

860. मन्त्रशक्ति: मन्त्रस्य अदृश्या शक्तिः। (अक्षरों के बार-बार गूंजने से पैदा होने वाली वह दिव्य ऊर्जा जो अनहोनी को होनी कर देती है।)

861. पुरश्चरण: मन्त्रजपस्य महद् अनुष्ठानम्। (किसी मंत्र को सिद्ध करने के लिए लाखों की गिनती में किया जाने वाला कड़ा व्रत।)

862. मौनव्रत: वाण्याः निरोधव्रतम्। (मन को एकाग्र करने के लिए कुछ दिनों तक मुँह से एक शब्द भी न बोलने का नियम।)

863. चातुर्मास्य: चतुर्णां मासानां व्रतम्। (बरसात के चार महीनों में संतों द्वारा एक ही स्थान पर रुककर कड़े तप और प्रवचन करना।)

864. व्रतोद्यापन: व्रतस्य पूर्णता उत्सवः। (किसी लंबे व्रत के पूरा होने पर पंडितों को भोजन कराकर दी जाने वाली सुंदर विदाई।)

865. षष्टाङ्गप्रणाम: षड्भिः अङ्गैः प्रणामः। (घुटने, हाथ और सिर को झुकाकर आदर से झुकने का नियम।)

866. साष्टाङ्गप्रणाम: अष्टभिः अङ्गैः पूर्ण पातः। (अहंकार को शून्य करके छाती और पेट के बल पूरी तरह लेटकर दंडवत प्रणाम।)

867. करन्यास: करयोः मन्त्रन्यासः। (मंत्र की शक्तियों को अपनी उंगलियों और हथेलियों में स्थापित करने की तांत्रिक विधि।)

868. अङ्गन्यास: शरीराङ्गेशु मन्त्रन्यासः। (मंत्र के अक्षरों को छूकर अपने हृदय, सिर और आँखों को सुरक्षित कवच में बांधना।)

869. कलशस्थापन: कलशस्य पवित्रा स्थापना। (पूजा के आदि में तांबे के लोटे में जल और आम के पत्ते रखकर वरुण देव को बुलाना।)

870. स्वस्तिवाचन: स्वस्ति (कल्याण) सूचकं वाचनम्। (यज्ञ के शुरू में पंडितों द्वारा चारों दिशाओं के कल्याण के लिए पढ़े जाने वाले वैदिक मंत्र।)

871. सङ्कल्पसूत्रा: सङ्कल्पस्य पवित्रा धागा (मौली)। (हाथ की कलाई पर बांधा जाने वाला वह लाल धागा जो प्रतिज्ञा की याद दिलाता है।)

872. पंचगव्य: गवां पञ्च पवित्राः पदार्थाः। (गाय का दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र का वह मिश्रण जो शरीर को भीतर से शुद्ध करता है।)

873. गोमूत्रशुद्धि: गोमूत्रेण पवित्रीकरणम्। (साधना के स्थान को पवित्र करने के लिए देसी गाय के प्रामाणिक मूत्र का छिड़काव।)

874. कुशआसन: कुशानां पवित्रं आसनम्। (विशेष प्रकार की घास 'कुश' से बना वह आसन जो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को साधना की ऊर्जा चुराने नहीं देता।)

875. व्याघ्राम्बर: व्याघ्रस्य चर्म (आसनम्)। (पुराने काल में सिद्ध योगियों द्वारा ध्यान के लिए इस्तेमाल की जाने वाली बाघ की सूखी खाल।)

876. भस्मलेपन: भस्मनः सम्यक् लेपनम्। (संसार की नश्वरता को याद रखने के लिए शरीर पर यज्ञ की राख मलना।)

877. कमण्डलु: साधूनां पवित्रं जलपात्रम्। (लकड़ी या सूखी लौकी से बना साधुओं का वह बर्तन जिसमें गंगा जल रहता है।)

878. दंडधारण: पवित्र दण्डस्य धारणम्। (संन्यासी द्वारा मर्यादा और धर्म के प्रतीक के रूप में सूखी लकड़ी का डंडा हाथ में लेना।)

879. जटाजूट: जटानां सुंदर समूहः। (सिर के बालों को न काटकर उन्हें मुकुट की तरह सिर पर बांधने की योग-परंपरा।)

880. कन्थाधारी: जीर्णवस्त्राणां वस्त्रम् (गोदड़ी)। (अहंकार और फैशन को छोड़कर फटे-पुराने टुकड़ों से बनी गोदड़ी ओढ़ने वाले परम संत।)

881. कौपीन: कटिवस्त्रम् इति कौपीनम्। (इन्द्रियों के संयम के लिए संन्यासियों द्वारा पहना जाने वाला लंगोट।)

882. तिलकधारण: मस्तके तिलकस्य स्थापनम्। (दोनों भौहों के बीच चेतना के केंद्र को जाग्रत रखने के लिए चंदन या रोली लगाना।)

883. शङ्खध्वनि: शङ्खस्य दिव्य ध्वनिः। (पूजा के समय बजाए जाने वाले शंख की वह आवाज जिससे आसपास के सब बैक्टीरिया और भूत-प्रेत भाग जाते हैं।)

884. घण्टानाद: घण्टायाः मधुर नादः। (मंदिर के घंटे की वह गूंज जो हमारे मस्तिष्क की दोनों परतों को शांत करके एकाग्र कर देती है।)

885. वेदमन्त्र: वेदस्य साक्षात् मन्त्राः। (परमात्मा की वाणी के वे शुद्ध अक्षर जो ब्रह्मांड की मूल चाबियाँ हैं।)

886. पुरुषसूक्त: ऋग्वेदस्य प्रसिद्धं सूक्तम्। (ऋग्वेद का वह महासूक्त जिसमें भगवान के विराट रूप और सृष्टि की रचना का वर्णन है।)

887. श्रीसूक्त: लक्ष्म्याः पावन सूक्तम्। (वेदों का वह गुप्त सूक्त जिसके पाठ से दरिद्रता का नाश होता है और लक्ष्मी आती है।)

888. रुद्राष्टाध्यायी: रुद्रस्य अष्ट अध्यायाः। (शुक्ल यजुर्वेद के आठ अध्यायों का वह संग्रह जिससे शिव जी का प्रिय रुद्राभिषेक होता है।)

889. सप्तशती: सप्तशतानां मन्त्राणां समूहः। (मार्कण्डेय पुराण का वह ग्रंथ जिसमें दुर्गा जी के ७०० चमत्कारी मंत्र और चरित्र हैं।)

890. व्यासपीठ: व्यासस्य पवित्रा पीठ। (कथा सुनाने वाले महाराज का वह ऊँचा आसन जहाँ बैठकर केवल सत्य और शास्त्र की बातें होती हैं।)

891. उपदेशवचन: गुरोः मुखात् उपदेशः। (भटके हुए मन को सही रास्ता दिखाने वाले गुरु के अनमोल शब्द।)

892. शास्त्रार्थ: शास्त्राणाम् विचारः (चर्चा)। (विद्वानों के बीच किसी गूढ़ विषय पर शास्त्रों के प्रमाणों के आधार पर होने वाली ज्ञान-चर्चा।)

893. ब्रह्मभोज: ब्राह्मणानां (ज्ञानिनां) भोजनम्। (यज्ञ की पूर्णता पर ज्ञानी और पवित्र ब्राह्मणों को आदर सहित जिमाना।)

894. महाप्रायश्चित्त: महत् पापप्रायश्चित्तम्। (जाने-अनजाने हुए किसी बड़े अपराध के दाग को तपाने के लिए किया जाने वाला महातप।)

895. पावनभस्म: यज्ञस्य पवित्रा राख। (यज्ञ की अग्नि के शांत होने के बाद बची वह विभूति जिसे मस्तक पर लगाने से मन शांत होता है।)

896. शौचविधि: शरीरस्य आन्तरिक-बाह्य शुद्धि विधयः। (प्रातः काल उठकर इन्द्रियों और शरीर को साफ़ करने के कड़े नियम।)

897. सन्ध्यावन्दन: त्रिकाल सन्ध्यायाः वन्दनम्। (सुबह, दोपहर और शाम के समय सूर्य की तरफ मुँह करके गायत्री मंत्र अर्घ्य देना।)

898. वेदपाठ: वेदानां सस्वर पाठः। (उदात्त, अनुदात्त के ऊंचे-नीचे स्वरों के साथ वेदों के मंत्रों का गूंजता हुआ गान।)

899. मन्त्रसिद्धि: मन्त्रस्य पूर्ण जाग्रत अवस्था। (करोड़ों बार जपने के बाद मंत्र की अदृश्य शक्ति का साधक के वश में हो जाना।)

900. अखण्डज्योति: अविच्छिन्नः दीपकः। (घी का वह दीया जो बिना बुझे नवरात्रों या अनुष्ठान के नौ दिनों तक लगातार जलता रहता है।)

भाग 10: आध्यात्मिक गंतव्य, महापुरुष और परम शांति (901-1000)

901. चिदाभास: चितः आभासः। (बुद्धि पर पड़ने वाला शुद्ध चेतना का प्रतिबिंब।)

902. क्षेत्र: क्षीयते त्रायते च इति क्षेत्रम्। (यह परिवर्तनशील भौतिक शरीर जिसे शास्त्रों में खेत कहा गया है।)

903. सूक्ष्मशरीर: सूक्ष्मं च तत् शरीरम्। (मन, बुद्धि, प्राणों से बना अदृश्य शरीर जो मरने के बाद भी साथ जाता है।)

904. कारणशरीर: कारणं च तत् शरीरम्। (अज्ञान और वासनाओं से बना वह मूल शरीर जिससे बाकी दोनों शरीर जन्म लेते हैं।)

905. स्थूलशरीर: स्थूलं च तत् शरीरम्। (हाड़-मांस से बना पाँच तत्वों का यह दृश्य शरीर।)

906. प्राण: प्राणिति इति प्राणः। (शरीर को जीवित रखने वाली मुख्य प्राण ऊर्जा।)

907. अपान: अपानयति इति अपानः। (शरीर के अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने वाली वायु।)

908. व्यान: व्यानो व्यापी इति व्यानः। (पूरे शरीर में रक्त और ऊर्जा का संचार करने वाली वायु।)

909. उदान: उन्नयति इति उदानः। (कंठ में स्थित वायु जो मृत्यु के समय जीवात्मा को शरीर से बाहर ले जाती है।)

910. समान: समं नयति इति समानः। (नाभि में स्थित वायु जो भोजन को पचाकर रस को समान रूप से बांटती है।)

911. ज्ञानशक्ति: ज्ञानस्य शक्तिः इति ज्ञानशक्तिः। (बिना किसी माध्यम के सत्य को सीधे जान लेने की शक्ति।)

912. इच्छाशक्ति: इच्छायाः शक्तिः इति इच्छाशक्तिः। (किसी बड़े कार्य को करने का अटूट मानसिक संकल्प।)

913. क्रियाशक्ति: क्रियायाः शक्तिः इति क्रियाशक्तिः। (विचारों को कर्म के धरातल पर सच कर दिखाने की सामर्थ्य।)

914. ज्ञानगंगा: ज्ञानस्य पवित्रा गङ्गा। (ब्रह्मज्ञान का वह अखंड प्रवाह जो सुनने वाले के अज्ञान के मैल को बहा देता है।)

915. चिदानंद: चित् आनंदः इति चिदानंदः। (चेतना और आनंद का वह एकीभाव जो समाधि में मिलता है।)

916. अद्वैतवेदांत: अद्वैत प्रधानः वेदान्तः। (शंकराचार्य का वह दर्शन जो जीव और ब्रह्म को साक्षात एक ही मानता है।)

917. विशिष्टाद्वैत: विशिष्टं च तत् अद्वैतम्। (रामानुजाचार्य का दर्शन जो जीव को ईश्वर का अंश और उनसे विशिष्ट रूप से जुड़ा मानता है।)

918. द्वैतदर्शन: द्वैतस्य प्रतिपादकः। (माधवाचार्य का दर्शन जो मानता है कि जीव और ईश्वर सदा दो अलग-अलग तत्त्व रहेंगे।)

919. शुद्धाद्वैत: शुद्धं च तत् अद्वैतम्। (वल्लभाचार्य का दर्शन जो माया के संबंध के बिना ही जगत को ब्रह्म का शुद्ध रूप मानता है।)

920. द्वैताद्वैत: द्वैतं च अद्वैतं च। (निम्बार्काचार्य का दर्शन जो जीव और ब्रह्म में भेद और अभेद दोनों को स्वीकार करता है।)

921. अचिन्त्यभेदाभेद: अचिन्त्यः भेदाभेदः। (चेतन्य महाप्रभु का मत कि जीव और ईश्वर का रिश्ता एक साथ भेद और अभेद का है जिसे बुद्धि से नहीं समझा जा सकता।)

922. ब्रह्मज्ञान: ब्रह्मणः यथार्थ ज्ञानम्। (यह साक्षात अनुभव कि यह सारा संसार केवल विधाता का फैलाया सपना है।)

923. आत्मज्ञानी: आत्मानं जानाति इति आत्मज्ञानी। (वह महापुरुष जो खुद को शरीर का पिंजरा नहीं, बल्कि अविनाशी चेतना जानता है।)

924. सिद्धपुरुष: सिद्धः अस्ति यः सः। (जिसने अपनी कठिन तपस्या से योग और प्रज्ञा की सर्वोच्च ऊँचाइयों को छू लिया है।)

925. अवधूत: अवधूयते सर्वबन्धनानि येन सः। (संन्यासियों की वह दिगंबर अवस्था जहाँ उन्हें न कपड़ों की सुध रहती है और न समाज की, जो अपनी मस्ती में मस्त रहते हैं।)

926. ब्रह्मलीन: ब्रह्मणि लीनः इति ब्रह्मलीनः। (जिस महापुरुष का चंचल मन हमेशा के लिए ब्रह्म सागर में डूबकर शांत हो चुका है।)

927. महायोगी: महान् च असौ योगी। (गोरखनाथ या शुकदेव जी की तरह योग विद्या के परम आचार्य।)

928. राजर्षि: राजा च असौ ऋषिः। (राजा जनक की तरह जो सिंहासन पर बैठते हुए भी भीतर से पूर्ण वीतराग और ऋषि थे।)

929. ब्रह्मर्षि: ब्रह्मणः ऋषिः इति ब्रह्मर्षिः। (वसिष्ठ या विश्वामित्र की तरह जिन्होंने ब्रह्म को साक्षात जानकर ऋषित्व पाया है।)

930. देवर्षि: देवानाम ऋषिः इति देवर्षिः। (नारद जी की तरह जो देवताओं के भी पूजनीय ऋषि हैं और त्रिलोक में हरि नाम गाते घूमते हैं।)

931. महर्षि: महान् च असौ ऋषिः। (व्यास या रमन महर्षि की तरह सत्य की खोज करने वाले परम वैज्ञानिक और द्रष्टा।)

932. सद्गुरु: सत्यं बोधयति इति सद्गुरुः। (जो झूठी सांसारिक आशाएं न देकर सीधे आत्मा के शाश्वत सत्य से परिचय करा दे।)

933. जगद्गुरु: जगतः गुरुः इति जगद्गुरुः। (आदि शंकराचार्य की तरह जिनके चरणों में पूरी दुनिया ज्ञान की भीख माँगने झुकती है।)

934. आचार्य: आचारं ग्राहयति इति आचार्यः। (जो केवल किताबों से नहीं, बल्कि अपने ऊंचे आचरण से धर्म की शिक्षा देता है।)

935. परिव्राजक: सर्वत्र भ्रमति इति परिव्राजकः। (वह संन्यासी जो किसी एक कुटिया या आश्रम से मोह न करके लगातार घूम-घूमकर धर्म का प्रचार करता है।)

936. उदासीनसंत: उदासीनः यः सन्तः। (वह महात्मा जो संसार के राग-द्वेष और राजनीति से सर्वथा ऊपर उठकर शांत बैठता है।)

937. तपस्वी: तपः करोति इति तपस्वी। (गर्मियों में पाँच अग्नियों के बीच और सर्दियों में ठंडे जल में खड़े होकर मन को तपाने वाला साधु।)

938. युगपुरुष: युगस्य नियामकः पुरुषः। (स्वामी विवेकानंद या आदि शंकराचार्य की तरह जो पूरे समाज की सोच को बदलकर एक नया युग खड़ा कर देते हैं।)

939. अवतार: अवतरति इति अवतारः। (जब साक्षात अविनाशी परमेश्वर लोक-कल्याण के लिए मनुष्य का रूप धरकर धरती पर उतरते हैं।)

940. पूर्णावतार: पूर्णः च असौ अवतारः। (श्री कृष्ण की तरह जो अपनी सभी १६ कलाओं और पूर्ण ऐश्वर्य के साथ प्रकट हुए थे।)

941. अंशावतार: अंशरूपः अवतारः। (किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए भगवान की किसी सूक्ष्म कला या शक्ति का अवतरण।)

942. चिदाकाशवास: चिदाकाषे वासः इति। (अपनी चेतना को संसार के कीचड़ से उठाकर ज्ञान के अनंत आकाश में सदा के लिए स्थापित कर लेना।)

943. ब्रह्मलोक: ब्रह्मणः सर्वोच्च लोकः। (सृष्टि का वह सबसे पवित्र और ऊँचा लोक जहाँ केवल सात्विक और मुक्त आत्माएं ही रहती हैं।)

944. शिवलोक / कैलाश: शिवस्य पावन लोकः। (वह परम शांत हिममय स्थान जहाँ साक्षात महादेव समाधि लगाए बैठे हैं।)

945. वैकुण्ठलोक: विगता कुण्ठा यस्मात् तत्। (जहाँ पहुँचकर मन की सब निराशा और वासना हमेशा के लिए मिट जाती है, श्री हरि का लोक।)

946. गोलोक: गवां (इन्द्रियाणां/प्रकाशानां) लोकः। (श्री कृष्ण का वह परम रसमय धाम जो दिव्य प्रेम और आनंद का मूल केंद्र है।)

947. साकेतधाम: श्री रामस्य पावन धाम। (मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का वह दिव्य लोक जहाँ परम शांति का साम्राज्य है।)

948. आत्मसाम्राज्य: आत्मनः असीम साम्राज्यम्। (संसार की गुलामी छोड़कर अपनी आत्मा के तख्त पर राजा बनकर बैठ जाना।)

949. परमानंद: परमः च असौ आनंदः। (वह असीम सुख जिसके आगे स्वर्ग की अप्सराओं का आनंद भी सूखी घास जैसा लगता है।)

950. अखण्डसाम्राज्य: न खण्डितं साम्राज्यम्। (आत्मज्ञान की वह अचल स्थिति जो मौत आने पर भी कभी छीन नहीं सकती।)

951. अमृतपद: अमृतस्य पावन पदम्। (मोक्ष की वह मंज़िल जहाँ पहुँचने के बाद जीव फिर कभी दुखों के संसार में नहीं लौटता।)

952. ब्रह्मभाव: ब्रह्मणः वास्तविक भावः। (यह स्पष्ट बोध कि मेरे भीतर जो चेतना है, वही पूरे ब्रह्मांड के तारों और ग्रहों में नाच रही है।)

953. निर्वाणपद: निर्वाणस्य परम पदम्। (वासनाओं और दुखों का दीपक पूरी तरह बुझ जाने पर मिलने वाली परम शांत स्थिति।)

954. कैवल्यमुक्ति: केवला पवित्रा मुक्तिः। (बिना किसी शरीर या लोक के बंधन के शुद्ध चेतना में हमेशा के लिए विलीन हो जाना।)

955. चित्तविश्रांति: चित्तस्य मूलतत्त्वे विश्रान्तिः। (लाखों जन्मों की अंतहीन दौड़ के बाद मन का अपनी आत्मा की गोदी में हमेशा के लिए सो जाना।)

956. परमपद: परमं च तत् पदम्। (भगवान विष्णु का वह पावन चरण-कमल या धाम जो सबसे ऊंचा और अचल है।)

957. भवमुक्ति: भवात् पूर्ण मुक्तिः। (चौरासी लाख योनियों के इस अंतहीन कोल्हू के पहिये से हमेशा के लिए छूट जाना।)

958. अद्वैतनिष्ठा: अद्वैते अचला निष्ठा। (संसार में कितने भी दुःख या सुख आएं, अपनी अभेद आत्म-स्थिति से कभी नीचे न गिरना।)

959. चिद्घनानंद: चित् घन आनंदः इति। (जहाँ चेतना और आनंद का ठोस पत्थर जैसा रूप हो, जिसमें कोई दुःख प्रवेश न कर सके।)

960. पूर्णत्व: पूर्णस्य भावः पूर्णत्वम्। (वह स्थिति जहाँ जीव की सब इच्छाएं मिट जाती हैं, वह खुद को ब्रह्मांड की तरह पूरा अनुभव करता है।)

961. शान्तम शिवम अद्वैतम: शान्तं शिवं अद्वैतम्। (माण्डूक्य उपनिषद का वचन—वह तत्त्व जो परम शांत है, अत्यंत कल्याणकारी है और दो नहीं केवल एक है।)

962. अजरामर: न जरा न मृत्युः यस्य सः। (वह योगी जो बुढ़ापे और मौत के पंजों को मरोड़कर अपनी आत्मा में अमर हो चुका है।)

963. चिन्मयरूप: चेतनाप्रचुरं स्वरूपम्। (माया के हाड़-मांस से सर्वथा रहित शुद्ध ज्ञान का दिव्य शरीर।)

964. जीवन्मुक्तावस्था: जीवन्मुक्तस्य पवित्रा अवस्था। (संसार में आँखें खोलकर सब काम करते हुए भी भीतर से पूरी तरह मुक्त और अछूते रहने की कला।)

965. ब्रह्मविद्वरत्व: ब्रह्मविदां श्रेष्ठता अवस्था। (ज्ञानियों की वह श्रेष्ठ स्थिति जहाँ वे सहज ही परमानंद के सागर में हिलोरे लेते हैं।)

966. अवाङ्मनसगोचर: वाण्याः मनसः च अगोचरः। (वह ब्रह्म तत्व जिसे न हमारी वाणी बोल सकती है और न हमारा चंचल मन सोच सकता है।)

967. त्रिकालबाधितसत्यः त्रिषु कालेषु अबाधितं सत्यम्। (वह सर्वोच्च सत्य जो सृष्टि के बनने से पहले था, आज भी है और प्रलय के बाद भी बचा रहेगा।)

968. अखण्डमण्डलाकारम्: अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन। (गुरु गीता का वचन—वह ईश्वर जो एक अखंड गोल पहिये की तरह पूरे ब्रह्मांड में समाया हुआ है।)

969. पूर्णमदः पूर्णमिदम्: पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। (ईशावास्य उपनिषद का महामंत्र—वह ब्रह्म भी पूरा है, यह जगत भी पूरा है, पूरे में से पूरा निकालने पर भी पीछे पूरा ही बचता है।)

970. तद्विष्णोः परमं पदम्: तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। (ऋग्वेद का वचन—ज्ञानी महापुरुष सदा अपनी ज्ञान की आँख से भगवान विष्णु के उस सर्वोच्च पद को साक्षात देखते रहते हैं।)

971. सत्यं शिवं सुंदरम्: सत्यं शिवं सुन्दरम् इति। (जो शाश्वत सत्य है, वही सबका कल्याण करने वाला शिव है और वही ब्रह्मांड की सबसे सुंदर चीज़ है।)

972. अहम् ब्रह्मास्मि बोध: अहम् ब्रह्मास्मि इति यथार्थ बोधः। (हृदय की गहराइयों में उठने वाला वह सिंहनाद कि मैं कोई तुच्छ कीड़ा या शरीर नहीं, साक्षात ब्रह्म हूँ।)

973. सर्वं खल्विदं ब्रह्म: सर्वं खलु इदं ब्रह्म। (छान्दोग्य उपनिषद का परम सिद्धांत—यह जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, पत्थर, पेड़, पौधा, सब कुछ साक्षात परमात्मा ही है।)

974. अयमात्मा शान्तः: अयम् आत्मा सर्वथा शान्तः। (उपनिषद का अमर वचन—यह जो मेरी अंतरात्मा है, यह संसार के सब झगड़ों, चिंताओं और भयों से सर्वथा शांत और अछूती है।)

975. अखण्डानन्दसागर: अविच्छिन्नः आनन्दस्य सागरः। (वह असीम आनंद का समुद्र जिसमें डूबने के बाद जीव को संसार का कोई भी दुःख याद नहीं रहता।)

976. चिदाभासलय: चिदाभासस्य मूले लयः। (बुद्धि के आइने का टूट जाना, जिससे परछाई गायब होकर साक्षात असली सूरज (ब्रह्म) में मिल जाती है।)

977. निर्विकल्पसमाधि: भेदशून्या परमा समाधिः। (पतंजलि योग और वेदांत की वह आखिरी मंज़िल जहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी हमेशा के लिए भस्म हो जाती है।)

978. स्वयंभू: स्वयं भवतीति स्वयंभूः। (जिसे किसी माता-पिता ने जन्म नहीं दिया, जो अपनी ही मर्जी और सत्ता से सदा प्रकट है, वह परमेश्वर।)

979. परात्परपुरुष: परात् अपि परः परम पुरुषः। (माया और प्रकृति की सर्वोच्च शक्तियों से भी ऊपर रहने वाला अद्वितीय विधाता।)

980. ऋतम्भराप्रज्ञा: ऋतं (सत्यं) बिभर्ति या सा। (योगसूत्र के अनुसार बुद्धि की वह जागृत अवस्था जहाँ मनुष्य के मुँह से केवल वही शब्द निकलते हैं जो ब्रह्मांड का परम सत्य हैं।)

981. सर्वभूतहितेरताः: सर्वेषां भूतानां हिते रताः। (गीता का वचन—वे आत्मज्ञानी महापुरुष जो अपनी मुक्ति पाकर भी चौबीसों घंटे केवल संसार के जीवों के कल्याण में लगे रहते हैं।)

982. विदेहकैवल्य: देहरहिता पवित्रा मुक्तिः। (प्रारब्ध कर्मों का भोग पूरा होने पर पाँच तत्वों के इस पिंजरे को हंसते-हंसते छोड़कर सदा के लिए विलीन हो जाना।)

983. अनाहतनादश्रुति: अनाहतनादस्य निरन्तर श्रवणम्। (समाधि की वह अवस्था जहाँ साधक को बिना कानों के भी पूरे ब्रह्मांड में गूंजती हुई ॐकार की दिव्य ध्वनि चौबीसों घंटे सुनाई देती है।)

984. ब्रह्मसंस्था: ब्रह्मणि सम्यक् स्थितिः। (अपनी चेतना और बुद्धि की नाव को हमेशा के लिए ब्रह्म के अनंत किनारे पर बांध देना।)

985. अवाच्यपद: वक्तुं न शक्यते यत् पदम्। (वह आध्यात्मिक मंज़िल जिसके सुख को चखने के बाद जीभ गूंगे के गुड़ की तरह कुछ बोल नहीं पाती।)

986. चिद्विलासदर्शन: चितः विलासस्य साक्षात् करणम्। (वह दिव्य दृष्टि जिससे साधक को संसार का हर दुःख और सुख केवल चेतना का एक सुंदर खेल दिखने लगता है।)

987. अखण्डबोधोदय: अविच्छिन्न ज्ञानस्य उदयः। (भीतर ज्ञान के उस असीम सूर्य का उगना जो फिर कभी किसी काल या अज्ञान के परदे से छिपता नहीं है।)

988. ब्रह्मसामीप्य: ब्रह्मणः समीपस्थ स्थितिः। (भक्ति शास्त्र की वह मुक्ति जहाँ भक्त सदैव अपने ठाकुर जी के समीप रहकर उनकी सेवा का परमानंद भोगता है।)

989. ब्रह्मसारूप्य: ब्रह्मणः समान रूपता। (भगवान के लोक में पहुँचकर भक्त का भी वैसा ही तेजोमय और चतुर्भुज दिव्य रूप हो जाना।)

990. ब्रह्मसालोक्य: ब्रह्मणः लोके वासः। (अपने इष्टदेव के उसी पावन वैकुंठ या गोलोक धाम में हमेशा के लिए रहने का अधिकार पा लेना।)

991. तत्त्वमसिबोध: तत् त्वं असि इति महावाक्य बोधः। (गुरु के मुख से सुनते ही भीतर बिजली की तरह कड़कने वाला वह अनुभव कि मैं ही वह परमेश्वर हूँ।)

992. आत्मरति: आत्मनि एव रतिः (प्रेम) यस्य सः। (संसार की किसी सुंदर स्त्री या धन से प्रेम न करके केवल अपनी अंतरात्मा के परम रस में डूबे रहना।)

993. विद्वन्मनोरंजन: विदुषां मनसः आनन्दः। (आत्मज्ञानी संतों की वह ज्ञान-गोष्ठी जहाँ सांसारिक कचरा नहीं, बल्कि केवल ब्रह्म-अमृत की चर्चा होती है।)

994. चित्तविश्रांतिपद: चित्तस्य विश्रान्तेः अन्तिम स्थानम्। (आत्मा का वह पावन घर जहाँ पहुँचने के बाद मन की चंचलता सदा के लिए गहरी नींद सो जाती है।)

995. कैवल्यज्योति: कैवल्यस्य परमा ज्योतिः। (मोक्ष के उस परम क्षण में जगमगाने वाला वह शुद्ध चैतन्य प्रकाश जो पूरे ब्रह्मांड को सराबोर कर देता है।)

996. अद्वैतानन्दलहरी: अद्वैत आनन्दस्य पवित्रा लहरी। (शंकराचार्य का वह दिव्य भाव जहाँ जीव आनंद की ऐसी लहरों में तैरता है जिसका कोई किनारा नहीं होता।)

997. ज्ञानामृत: ज्ञानं एव अमृतम् इति ज्ञानामृतम्। (ब्रह्मज्ञान का वह अमर रस जिसे एक बार जो पी लेता है, वह फिर कभी मृत्यु के चक्र में नहीं फंसता।)

998. परमशान्तिपद: परमशान्तेः शाश्वत पदम्। (वह सर्वोच्च आध्यात्मिक मंज़िल जहाँ संसार का कोई भी शोर, दुःख या तूफ़ान कभी प्रवेश नहीं कर सकता।)

999. साष्टाङ्गदण्डवत्: अष्टभिः अङ्गैः भूमौ पातः। (अपने पूरे शरीर को लाठी की तरह ज़मीन पर गिराकर अहंकार की खोपड़ी को गुरु-चरणों में कुचल देने का अंतिम समर्पण।)

1000. पूर्णम: पूर्णस्य पूर्ण स्वरूपम्। (वह आखिरी बिंदु जहाँ बूंद समुद्र बन जाती है; जीव शिव बन जाता है और केवल और केवल अनंत, अखंड, सच्चिदानंद ब्रह्म ही शेष रह जाता है।)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

पूर्णमदः: वह (परमेश्वर) पूर्ण है। पूर्णमिदं: यह (संसार) भी पूर्ण है। पूर्णात्पूर्णमुदच्यते: पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते: यदि पूर्ण में से पूर्ण को निकाल दिया जाए, तो भी शेष 'पूर्ण' ही बचता है। त्रिविध ताप की शांति हो।

(आध्यात्मिक): स्वयं के मन, आत्मा और शरीर की शांति के लिए। (आधिभौतिक): अपने आसपास के वातावरण, प्रकृति और मनुष्यों के बीच शांति के लिए।(आधिदैविक): दैवीय शक्तियों, ग्रहों और ब्रह्मांड की शांति के लिए।